ज़िन्दगी की राह
बालशौरी रेड्डी
UNIVERSITY LIBRARY
25 AUG 1962
राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट दिल्ली-६

दो शब्द

अपने उपन्यास के सबध मे कुछ कहना कठिन है। लेखक का काम वस्तु उपस्थित करना-मात्र होता है। उसकी बारीकियो तथा कमियो का विवेचन करना आलोचको तथा पाठको का काम है।

इस उपन्यास मे वर्णित कतिपय घटनाए यथार्थ का स्पर्श करते हुए भी उसकी छाया-मात्र कही जा सकती है। कल्पना का आश्रय तो प्रत्येक लेखक को लेना पडता ही है। परन्तु घटनाए अस्वाभाविक न हो। इसमे वर्णित घटनाए नित्यप्रति हम अपने समाज मे घटित होते देखा करते है।

पात्रो का निर्माण करते समय मेरा ध्यान इस ओर अवश्य रहा है कि वे वस्तु और वातावरण के अनुरूप तथा सच्चे रूप मे समाज के सामने आए, इसलिए जहा खूबिया दिखाई गई, वहा दुर्बलताए भी। ऐसा न होकर अपने पात्रो को आदर्शमय बनाना अथवा नग्न रूप मे उपस्थित करना मेरा अभिमत कभी नही रहा है।

जिन्दगी की अनेक राहे हो सकती है। पर प्रत्येक की राह अपनी होती है, प्रत्येक की समस्याए भी अपनी ही। अत. इन पात्रो की जिन्दगी की भी अपनी विशिष्टता है। इनसे एक की भी जिन्दगी को कुछ दिशा-दर्शन मिले तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूगा।

इस उपन्यास को इस सुन्दर रूप मे लाने का श्रेय राजपाल एण्ड सन्ज के सचालको को है। अत इनके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना अपना परम कर्तव्य मानता हूं।

मित्रवर श्री वेलगा रामकोटय्या चौधरी, एम. ए., प्राध्यापक, लयोला कालेज, मद्रास, ने पाण्डुलिपि तैयार करने मे जो सहायता पहुचाई, उसके लिए मै अपना साधुवाद देता हू।

आशा है, हिन्दी-जगत् पूर्ववत् इस रचना का भी उचित स्वागत करेगा।

—बालशौरी रेड्डी

१

हिमाच्छादित पर्वतमाला पर बोइग विमान उडान भरता हुआ मातृभूमि भारत की धरती का स्पर्श-सुख पाने के हेतु वायुवेग से चलने लगा। शीतकाल की भयंकर सर्दी में पर्वत-माला सिकुड़ी हुई दिखाई दे रही थी। विमान-यात्री निद्रादेवी के शीतल अक मे अपने अस्तित्व को भूलकर शयन-सुख का आनद ले रहे थे। केवल उद्योग-विभाग के सचिव सोमनाथ की आखें शून्य मे अपनी पुत्रियों के चित्र देखने का असफल प्रयत्न कर रही थी। रह-रहकर उन्हे अपनी मातृहीन पुत्रियो का स्मरण ताजा हो उठता।

दो मास पूर्व भारत से एक प्रतिनिधि-मडल रूस गया हुआ था। भारत मे भारी उद्योगो की स्थापना-संबन्धी मामलो पर विचार-विनिमय समाप्तकर प्रतिनिधि-मंडल भारत लौट रहा था। सोमनाथ उस दल का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। वे भारत के मेधावियो मे अपना अच्छा स्थान रखते है। अपनी कार्य-कुशलता तथा व्यवहार-बुद्धि से वे उच्च वर्ग के विश्वास-पात्र नने हुए थे। उनके मस्तिष्क मे चर्चा-सबन्धी अनेक समस्याए

चक्कर काट रही थी। भारत को अन्य देशो की भाति औद्योगिक विकास मे उन्नत देखने की योजना रूप-रेखाए प्राप्त कर रही थी।

मनुष्य चाहे जितना ही बडा बुद्धिमान, धनवान अथवा चरित्रवान क्यो न हो, समाज में उसका स्थान अलग होता है तथा परिवार मे अलग। उस परिवार को लेकर व्यक्ति के सामने अनेक कर्तव्य और अधिकार भी होते है। जब व्यक्ति इन समस्याओ को हल करने मे सफल होता है तभी वह समाज मे भी अपनी जिम्मेदारियों का भली-भाति पालन करने मे समर्थ हो जाता है।

सोमनाथ का परिवार सुसपन्न था। पत्नी, दो पुत्रिया, नौकर-चाकर, रिश्तेदार एव मित्रों से सदा उनका घर शोभायमान दीखता था। लेकिन एक वर्ष पूर्व नर्सिग होम मे उनकी पत्नी ने प्रसूति-रोग से पीड़ित हो सदा के लिए इस संसार से विदा ली। सोमनाथ पर इस घटना से मानो वज्रपात हुआ। कुछ दिन खोए से रहे। फिर शक्तिशाली समय ने इस घटना को भुला दिया।

सोमनाथ की काया विमान मे तो जरूर थी। लेकिन उनका दिल विजयवाड़ा मे स्थित अपने परिवार के इर्दगिर्द मंडराने लगा। गाधीनगर के उद्यानवन के सामने स्थित दुमंजिला मकान उनकी आखो के सामने चल-चित्र की भाति एकबार घूम गया, उनकी सारी ममता और वात्सल्य अपनी

पुत्रियों को देखने के लिए उमड़ पड़ा । अपने कर्तव्य के पालन मे वज्र की भाति कठोर दिखाई देनेवाले सोमनाथ का दिल एकात मे मोम की भाति पिघलने लगा । अपनी पत्नी के स्मरण-मात्र से उनकी आखे सजल हो उठी । थोडी देर बाद उन्हें अपनी पुत्रियों की याद आई । वे अपनी जान से भी ज्यादा अपनी लडकियो से प्यार करते थे । वे स्वय माता बनकर उनकी देखभाल किया करते थे । लेकिन इधर कुछ असुविधाओ के कारण वे परिवार को अपने साथ न रख सके । उसकी सारी जिम्मेदारी बूढे नौकर शकरन नायर को सौपकर वे निश्चिन्त रहे । जब-तब विजयवाडा आते, कुछ समय बच्चो के साथ बिताकर फिर चले जाते ।

सोमनाथ के रूस जाते वक्त बच्चो ने तरह-तरह की चीजे ला देने की माग की थी । सोमनाथ उन सब चीज़ों को अपने साथ ले आ रहे थे । इसकी स्मृति-मात्र से एक बार उन्होने सभी चीजों को टटोलकर देखा और मन ही मन यह सोचकर प्रसन्न हुए कि इन वस्तुओं को पाकर लड़किया बहुत खुश होगी । उनकी कल्पनाओ का ताता बन ही रहा था कि हठात् विमान के इजन मे कोई बडी भारी हरकत हुई और विमान जलने लगा ।

सोमनाथ ने बडी व्यग्रता के साथ खिडकी से बाहर देखा । चारो तरफ घना अधकार फैला हुआ था । उस विशाल-विश्व में विमान एक छोटे से जुगनू की भांति उड़ रहा था ।

आखिर मनुष्य कितना छोटा-सा प्राणी है। मृत्यु कैसी भयानक है। सोमनाथ का दिल तेजी के साथ धड़कने लगा। उस शून्य में उनकी पत्नी की छाया अपनी ओर मानो संकेत करती हुई दिखाई दी। सोमनाथ का मन जीवन और मृत्यु-रूपी दो किनारों के बीच मंझधार में फंसी नाव की भांति दोलायमान होने लगा। मनुष्य के जीवन का अंतिम लक्ष्य क्या है? जीवन या मृत्यु। क्या मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता है? मृत्यु क्या है? एक भावना ही तो है। प्राण वायु है। स्थूल शरीर में सूक्ष्म प्राण का निवास कैसा विचित्र नर्तन है? उसके अभाव में मानव जड़ वस्तु की भांति निश्चिन्त हो जाता है, किन्तु जीवन को लेकर वह कैसा खेल खेलता है इस विश्वरूपी रंगमंच पर! जीवन सत्य है। मृत्यु क्या कभी सत्य नहीं हो सकती? मेरी पत्नी अदृश्य है। पुत्रियां दृश्य है। मैं इन दृश्यादृश्यों के बीच धुंधला-सा दिखाई देनेवाला अधूरा चित्र हूं, इस चित्र की रेखाएं विश्वरूपी पट पर कब खींची और उन रेखाओं में कैसे रंग उंडेल दिया गया तथा ये रेखाएं अब कैसे मिटती जा रही हैं? एक बार सोमनाथ ने अपनी पुत्रियों का स्मरण किया। वे सोचने लगे कि वे अबोध बच्चियां अनाथ हो जाएंगी। माता-पिता के सुख से वंचित हो जीवन-पर्यंत वे कड़वे घूंटे पीते हुए दुःखमय जीवन व्यतीत करेंगी। इस समय वे दोनों निश्चिन्त सोती होंगी। उनको क्या मालूम कि कल प्रात:काल संसार को रोशनी

प्रदान करनेवाला सूरज उन्हे दुखद समाचार सुनाएगा। इस कल्पना-मात्र से सोमनाथ अपने मन पर काबू न कर सके और बच्चे की तरह कलप-कलपकर रोने लगे। उनकी आखे फटी हुई-सी थी, और उस अधकार मे वे अग्नि-कणो की भाति जल रही थी। आग के शोले लपलपाते हुए सोमनाथ के कपडो का चुम्बन लेने लगे। इन ज्वालाओ के बीच सोमनाथ ने अनुभव किया कि उनकी चिता वही सजाई गई हो।

२

प्रात:काल का समय। सुरम्य प्रकृति के बीच मे स्थित वन किन्नेरा की भाति विजयवाड़ा नगरी धीरे-धीरे अंगडाइया लेने लगी। गाधीनगर के मुहल्ले मे चहल-पहल शुरू हुई। 'शान्ति निलय' के सामने पोर्टिको मे 'प्लैमौथकार' खड़ी है। आधुनिक सभ्यता मे पली एक नव-यौवना अपने कोमल हाथ मे टेनीस-रैकेट लिए उछलती-कूदती कार मे जाकर बैठी। कुछ ही मिनटों मे वह कार गाधीनगर की मेन रोड पर बडी तेजी के साथ सरकती जाने लगी। अभी क्लब का फाटक बन्द ही था। उस युवती ने चपरासी को सकेत किया। टेनीस-कोर्ट के पास पहुचकर अपनी सहेलियो की प्रतीक्षा करने लगी।

इधर घर मे उसकी बड़ी बहन सुहासिनी कालकृत्य

समाप्त कर रेडियो के सामने जा बैठी। प्रतिदिन प्रात.काल रेडियो समाचार सुनने की उसकी आदत थी। उसने ज्योही रेडियो ट्यून किया त्योही उस दिन के कार्यक्रम की घोषणा हुई। ······"यह आकाशवाणी, दिल्ली है·· ···समाचार सुनिए, ··· ··कल रात बारह बजे के करीब एक भयंकर हवाई दुर्घटना हुई। रूस से दिल्ली लौटनेवाला बोइग विमान सहसा इजन के खराब होने की वजह से जलकर पहाड की चोटियों से टकराया और चूर-चूर हो गया। विमान में यात्रा करनेवाले करीब तीस यात्री मृत्यु के शिकार हुए। कुछ लोगो के शरीर इस प्रकार जल गए है कि पहचाने ही नही जा सकते। कुछ शव पहचाने गए है। उनमे एक शव उद्योग-विमान के सचिव श्री सोम-नाथ का भी है। इस दुर्घटना का समाचार सुनकर दिल्ली के निवासी शोक-सतप्त हुए। सरकारी कार्यालयो पर उड़नेवाले झडे आधे झुकाए गए है।"······इस समाचार को सुनते ही सुहासिनी जोर से चिल्ला उठी—"पिताजी···" और बेहोश हो नीचे गिर पडी। इतने मे शकरन नायर ट्रे मे कॉफी लिए आ पहुंचा। सुहासिनी की हालत देख बूढा नायर घबरा गया और उसके हाथ से ट्रे नीचे गिर पड़ा। गिलास टूटकर चूर-चूर हो गया। जल्दी रसोई में दौडा, ठडा पानी ले आया और सुहासिनी के चेहरे पर छिड़कने लगा। थोड़ी देर के बाद वह होश मे आई और चिल्लाने लगी—"पिताजी, पिताजी"······नायर की समझ मे कुछ नही आया। उसने देखा सुहासिनी का सुन्दर

मुखडा कुम्हलाया हुआ है । हमेशा प्रसन्न दिखाई देनेवाली वह आज घबराई हुई है । नायर से कुछ करते नही बना । उसने उसे लेजाकर पलग पर बिठाया और डाक्टर के घर दौड़ा-दौडा जाकर उन्हे साथ ले आया ।

डाक्टर ने सुहासिनी की नब्ज देखी और स्टेथस्कोप से उसके दिल की धडकन आकी । तत्काल ही एक इजेक्शन और दवा भी दी । सुहासिनी के जरा स्वस्थ होने पर उसने बडी दीनता से डावटर की आखो मे देखते हुए पूछा—"डाक्टर, आपने मुझे क्यो बचाया ?"

"बचाना मेरा धर्म है ।"

"अगर मै नही चाहू तो ?"

"जीवन प्रकृति की सुन्दर देन है । कौन नही चाहता ? सौ साल का वृद्ध भी दम तोडते समय यही चाहता है कि दस साल और जीवे ।"

"यदि जीने मे कोई आकर्षण न हो तो ?"

"जीवन जीने के लिए और कुछ करने के लिए है, मरने के लिए नही । मरना तो एक दिन जरूर है, परन्तु प्रत्येक प्राणी की निश्चित अवधि जो होती है ।"

"मै विष पीकर मर जाऊ तो ?"

"कभी-कभी लोग बच भी जाते हैं । हम उन्हे मरने नही देते । विष उगलवा देते है । कानून की दृष्टि मे आत्महत्या महान पाप है ।"

"क्या मनुष्य को मरने का भी अधिकार नही है ?"

"नही, जीने का जरूर है। जिलाने का तो डाक्टरों का है।"

"डाक्टर, आप मेरे परिवार की दशा से परिचित होते तो कदाचित् मुझे नही बचाते।"

"मै परिचित होऊ या नही, अपना कर्तव्य जरूर करूंगा। लेकिन यह तो बताओ कि तुम्हे किस बात की कमी है ?"

"डाक्टर, ससार मे सारी सपत्ति भी माता-पिता के अभाव मे धूल के समान है।"

"यह तुम क्या कहती हो ? तुम्हारे पिता तो एक बहुत बड़े अफसर है। भारत के मेधावी वर्ग मे वे काफी मशहूर है। उनकी उदारता एवं सच्चरित्रता से कौन परिचित नही है ? ऐसे पिता को पाकर कोई भी गर्व कर सकता है। यहा तक कि भारत के लिए भी वे गर्व के कारण है।"

"डाक्टर, अब मेरे पिता नही रहे······"

सुहासिनी का कठ गद्गद हो उठा। वह एकदम रो पड़ी। डाक्टर के आश्चर्य की सीमा न रही। वे चौक उठे। फिर पूछा—"तुम पागल तो नही हुई हो ?···वे रूस से आज या कल भारत लौटनेवाले है। भारत और रूस के बीच औद्योगिक विकास-संबधी समझौता उन्हीकी कार्यकुशलता पर निर्भर है। वे भी तुम लोगो को देखने के लिए जल्दी विजयवाड़ा आ ही जाएगे।"

सुहासिनी ने रोते हुए सारा वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुनकर मानो डाक्टर पर बिजली गिर गई।

डाक्टर सुहासिनी को धीरज बधा ही रहे थे कि पोर्टिको मे कार का हार्न सुनाई दिया। सरला टेनीस-रैकेट हाथ मे घुमाते हुए गुनगुनाती हुई हाल मे पहुची। बूढा नायर सामने आया। वह कुछ कहना चाहता था लेकिन कुछ कह न पाया। उसके दिल के भीतर से दुःख का प्रवाह उमड पड़ा। वह फफक-फफककर रोने लगा।

"दादा, यह तुम्हे क्या हो गया ?" सरला पूछ बैठी। इतने मे बगल के कमरे मे अपनी बहन सुहासिनी का रुदन सुनाई पड़ा। एक छलाग में सरला वहा पहुची। सुहासिनी ने उछलकर सरला को गले से लगाया और जोर से चिल्ला उठी।

"बहन—" और फूट-फूटकर रोने लगी। सुहासिनी के शोक का पारावार न रहा। रोते-रोते उसने सारी कहानी कह डाली। दोनो बहने कब तक रोती-कलपती रही, कहा नही जा सकता। डाक्टर ने बहुत-कुछ समझाया। लेकिन वे रोती ही रही।

३

विजयवाड़ा रेलवे स्टेशन। यात्रियो से सभी प्लेटफार्म खचाखच भरे हुए है। इतने मे चौथे नम्बर प्लेटफार्म पर मद्रास मेल आ लगी। यात्री सब उतरने-चढने लगे। एक पहले दर्जे के डिब्बे के पास सरला और सुहासिनी खडी हुई है। बूढा नायर सामान डिब्बे मे सजा रहा है। सरला आज सुहासिनी को छोडकर जा रही है। आज तक ये दोनो बहने साथ रही। आज बिछुडते सुहासिनी का दिल बैठ गया। अब उसे अकेली ही घर पर रहना होगा। इस कल्पना-मात्र से वह विचलित हुई और उसका गला भर आया। सरला से आलिगन करते हुए वह रो पड़ी।

"बहन, आज पिताजी होते तो कितने खुश हो जाते। हमको अनाथ बनाकर इस दुनिया से मुह मोड़ गए हैं।"—सुहासिनी ने कहा।

"दीदी, पिताजी कहते थे कि मै डाक्टरी पढू। माताजी भी यही चाहती थीं। लेकिन आज दोनो नही रहे। हमारा बेड़ा कैसा पार होगा, भगवान ही जाने।"—यह कहते-कहते सरला के नेत्र सजल हो उठे। उस शोकातिरेक मे दोनो बहने एक-दूसरी को गले लगाकर रोने लगी। इतने मे दीनदयाल की पुकार से उनका ध्यान भग हुआ। दोनो ने परिचित कठ की ध्वनि सुनकर घूमकर देखा। सामने दीनदयाल को पाकर उनके

चरणो पर गिर पड़ी। दीनदयाल ने दोनों को ऊपर उठाते हुए कहा—"बेटी, घवराती काहे हो ? अब दुःखी होने से तुम्हारे पिता लौट नही सकते। लेकिन तुम लोगो को चाहिए कि पुत्रिया होकर भी पुत्रो के अभाव का दु ख दूर करे।"

इतने मे गार्ड ने सीटी दी। बेतहाशा सब यात्री इधर-उधर दौडने लगे। एक कुली ने एक सूटकेस और एक टेनीस-रैकेट लाकर खिडकी से घुसेड़ दिया। गार्ड ने हरी झडी दिखाई। इजन भी सीटी देने लगा।

सरला अपनी सीट पर जा बैठी। दीनदयाल ने उसे ढाढस बधाते हुए कहा—"बेटी, अच्छी तरह पढना। पिता का नाम रखना। घर की चिता न करो।"

"काका, बडी बहन का ख्याल रखना। वह नाजुक-मिजाज की है। जब-तब मुझे पत्र लिखना।"—सरला ने कहा।

"बेटी, तुम नही जानती, तुम्हारे पिता मेरे कितने अभिन्न मित्र थे। मुझे उन्होने कितनी मदद पहुचाई है। उसे मै जीवन-भर भूल नही सकता हू। तुम सुहासिनी की चिता मत करो, जाते ही चिट्ठी लिखना।"—दीनदयाल बोले।

"दीदी, दीदी, तुम रोती क्यों हो ? मै डाक्टर बनूगी। हमारी हालत फिर अच्छी हो जाएगी। तुम बराबर पिता को यादकर रोती न रहना। जो कुछ होना है सो होकर ही रहना है। हमे तो अपना कर्तव्य करना ही होगा। अच्छा,

अब मुझे आशीश दो ।"

"बहन, अब मै कभी नही रोऊगी । तुम अच्छी तरह पढना। अपनी तबीयत का ख्याल रखना"—यह कहते सुहासिनी अपने आचल से आसू पोंछने लगी । इतने मे गाडी रवाना हुई । सुहासिनी और दीनदयाल ने हाथ उठाकर विदाई दी ।

गाड़ी की रफ्तार धीरे-धीरे तेज होने लगी । एक युवक दौड़ता हुआ आया और पहले दर्जे के डिब्बे में चढा । सरला उसे देखकर चौक गई ।

"अजी यह जनाना डिब्बा है । उतर जाइए ।"—सरला ने कहा ।

"अच्छा माफ कीजिए । मेरा सामान यहीं है । जरा देखते रहिएगा । मै अगले स्टेशन पर ले जाऊगा ।"—यह कहते हुए युवक उतर गया और दूसरे डिब्बे मे जा बैठा । गाडी की रफ्तार और तेज हुई । सरला ने देखा रैकेट-केस पर 'सुरेश' लिखा हुआ है । उसके साथ एक अग्रेजी साप्ताहिक पत्र 'स्पोर्ट एण्ड पास्ट टाइम' भी है । सरला ने उसके पन्ने उलटना शुरू किया । उलटते-उलटते वह ठिठक गई । एक स्थान पर उसके और सुरेश के चित्र छपे हुए है । पिछली बार अन्तर्कालेज-खेल-प्रतियोगिता मे जो विजयी हुए थे, उनके चित्र परिचय के साथ इस अक मे छपे थे । सरला थोड़ी देर तक देखती रही, फिर वह किसी स्मृति में वह खो गई । केवल उसकी आखे शून्य में कुछ ढूढने का प्रयत्न करने लगीं ।

लेकिन वह उलझती ही गई, पर उसके हाथ कुछ नहीं लगा। इसी उधेडबुन मे वह कब सो गई, पता नही। आख खुलते ही उसने देखा कि मद्रास स्टेशन पर गाड़ी आ लगी है।

४

मद्रास सेंट्रल स्टेशन पर सर्वत्र कोलाहल सुनाई दे रहा है। यात्री गाडियो से उतरने और चढने मे निमग्न है। सब अपने-अपने सामान उतारने के पहले एक बार बडी आतुरता के साथ जाच कर रहे है। प्लेटफार्मो पर कुली कतारो मे खड़े गाडियो मे सामान चढाने और उतारने मे मदद पहुचा रहे है। तो कही मजदूरी ठीक करने मे निमग्न है। सरला ने कुली को को पुकारा। अपना होल्डाल और सूटकेस लाने का आदेश दे वह डिब्बे से नीचे उतरने लगी। इतने मे दौडता हुआ सुरेश आ पहुचा। सरला को देखा, उसकी बाछें खिल गईं। सहमी हुई आवाज मे उसने कहा—"माफ कीजिएगा। मैने आपको बहुत कष्ट पहुचाया। दूसरे स्टेशन पर सामान ले जाना चाहता था, लेकिन झपकी आ गई तो सो गया।"

"कोई बात नही, लेकिन यह तो बताइए, आपको कहा जाना है?"—सरला ने पूछा।

"मुझे मद्रास मेडिकल कॉलेज जाना है।"

"ओह, मै भी तो वही जा रही हूं। लेकिन मैं यह नही जानती कि कॉलेज किस मुहल्ले मे है ?"

"क्या आप पहली बार मद्रास आ रही है ?"

"जी हा, मुझे इसके पूर्व कभी मद्रास आने का अवसर नही मिला"

"तो चलिए। टैक्सी करके चलेगे।"

"बहुत अच्छा हुआ, आपसे मुलाकात हुई न होती तो मुझे बडी तकलीफ होती। चलिए, चले।"

दोनों ने अपना सामान कुलियो को दिया। स्टेशन के बाहर आ गए। एक-एक करके टैक्सिया आने-जाने लगी। सुरेश ने एक टैक्सी तय की। कुली को पैसे देकर दोनो उसमे जा बैठे। ड्राइवर ने सुरेश का आदेश पाकर टैक्सी स्टार्ट की। कुछ ही मिनटो मे मद्रास की चिकनी सुन्दर एव चौडी सड़क पर टैक्सी सरकती जाने लगी।

सरला को मद्रास का यह वातावरण एकदम नया-सा मालूम होने लगा। उसे अपनी बहन की याद आई। आज वह अकेली किसी महान लक्ष्य को लिए एक अपरिचित युवक के साथ जा रही है। यह जीवन भी कैसा विचित्र है ! मनुष्य संसार मे जन्म लेता है तो पहले-पहल माता-पिता और क्रमश: परिवार से परिचय प्राप्त कर लेता है। ज्यो-ज्यो अवस्था बढती जाती है, त्यो-त्यो व्यक्ति नई परिस्थितियों से परिचय पा लेता है और नये-नये अनुभव प्राप्त कर लेता है। कुछ लोग

इन परिस्थितियो के साथ समझौता कर आगे निकल जाते हैं। कुछ लोग परिस्थितियो को अपने अनुकूल न बना सकने की हालत मे जिन्दगी की रफ्तार मे पिछडे रह जाते है, जो व्यक्ति जीवन मे आगे बढ नही पाता है वह यही सोचकर संतोप की सास लेता है कि उसका भाग्य प्रबल नही निकला, बल्कि खोटा है। कुछ ऐसे व्यक्ति भी है जो दूसरो की उन्नति पर ईर्ष्या करते हुए अपना समय यो ही नष्ट कर डालते है। जिन्दगी मे जो व्यवित आगे बढना चाहता है उसे नये वातावरण मे कभी-कभी विपरीत परिस्थितियो मे भी हसी-खुशी के साथ कदम आगे बढाने पडते है।

सरला के मन मे डाक्टर बनने की अदम्य आकाक्षा थी। उसकी पूर्ति के लिए उसे इस नये वातावरण मे खप जाना आवश्यक ही नही, अपितु अनिवार्य था। उसमे उत्साह का अभाव नही। उसकी बुद्धि भी तेज है। वह देखने मे जितनी सुन्दर है उतनी ही भावुक भी है। यद्यपि यौवनावस्था मे वह प्रवेश कर चुकी है, फिर भी उसमे बचपन का वह अल्हड़-पन वैसे ही बना हुआ है। आज तक वह घर पर रहकर परिवार की छत्रछाया में पलती रही। अब उसे नये व्यक्तियो के बीच और नये वातावरण में अपने दिन गुजारने है। इसी उधेड़बुन में वह मौन थी। सहसा सुरेश के वार्तालाप ने उसका ध्यान भग किया।

सुरेश ने पूछा—"आप होस्टल मे रहेगी या अलग कमरा

लेगी ?"

"वैसे तो मै होस्टल मे ही रहना चाहती हूं, यदि वहां मुझे सीट नही मिली तो फिर कोई दूसरा मार्ग ढूढना होगा ।"

"क्या आपने होस्टल मे सीट के लिए आवेदन नही किया ?"

"क्यो नही ? हमने तो लिखा था । लेकिन वार्डन से जवाब आया कि आपका नाम वेटिग लिस्ट मे है । इसलिए वार्डन साहब से मिलने पर ही मै कुछ निर्णय कर सकती हू ।"

एक झटके के साथ टैक्सी अचानक रुक गई । सरला और सुरेश ने झांककर देखा कि सामने मेडिकल कॉलिज का साइन-बोर्ड दिखाई दे रहा है ।

सुरेश ने टैक्सी को आफिस रूम के फाटक तक ले जाने का ड्राइवर को आदेश दिया । वहा पहुचकर सरला और सुरेश टैक्सी से उतरे । आफिस में पहुचकर दोनों ने देखा कि होस्टल के विद्यार्थियो की सूची और उन-उन विद्यार्थियो के कमरो के नम्बर नोटिस बोर्ड मे दर्ज किए हुए है । सुरेश ने उत्साह से उछलकर कहा कि मुझे तो होस्टल मे सीट मिल गई है । उस सूची में सरला ने अपना नाम न देख रोनी सूरत बनाई । इतने मे चपरासी ने कहा कि महिलाओं की सूची 'वुमेन-होस्टल' मे है । वहा जाकर देखिए ।

सुरेश के साथ वहा पहुचकर सरला ने देखा कि उसे भी होस्टल मे सीट मिल गई है । उसकी खुशी का ठिकाना न

रहा। दोनो आफिस मे पैसा जमाकर अपने-अपने होस्टल में भर्ती हो गए।

५

रात के आठ बजे का समय, वैशाख की असहनीय गर्मी कृष्णा बराज की ओर से चलनेवाली ठंडी हवा से धीरे-धीरे कम होने लगी। विजयवाड़ा की सभी गलिया बिजली की बत्तियों से शोभायमान थी। एक युवक 'शाति-निलय' के फाटक के सामने रिक्शे से उतरा। रिक्शेवाले को सामान लाने की आज्ञा देकर कपाउड के भीतर पहुचा। किसी अपरिचित व्यक्ति को देख उस विशाल भवन का पहरा देनेवाला आल-सेशियन कुत्ता भूकने लगा। युवक घबराया। फिर चुटकी बजाते दरवाजे के पास पहुचकर खटखटाने लगा। सुहासिनी आहट पाकर 'हॉल' मे आई। खिडकी से झाककर देखा। कोई युवक मिलिटरी पोशाक मे बरामदे में खड़ा हुआ दिखाई दिया। सुहासिनी ने पूछा—"आप कौन हैं? क्या चाहते है?"

युवक ने निस्सकोच भाव से कहा—"सुहासिनी, मै राजाराम हू, पहचानती नही हो?"

"राजाराम कभी का भाग गया है, उसका पता तक नही! तुम कोई धोखेबाज़ मालूम होते हो।"

"यकीन करो, मै तुम्हारा फुफेरा भाई हू, पिताजी को बुलाओ, वे मुझे पहचान लेंगे।"

सुहासिनी अपने पिता के स्मरण-मात्र से सिहर उठी, युवक चकित हो देखता ही रहा। दीनदयाल के जूतो की आवाज सुनकर राजाराम ने पीछे मुडकर देखा। कोई बुजुर्ग सीधे उसी तरफ घर की ओर चला आ रहा है। राजाराम ने उस व्यक्ति को पहचान लिया। उसे बडी खुशी हुई कि ऐन मौके पर वे आ गए। दीनदयाल राजाराम की ओर प्रश्नार्थक दृष्टि से देख ही रहे थे कि राजाराम बोल उठा—

"काकाजी, कुशल-मगल है न ?"

दीनदयाल सोचने लगे कि कठ तो परिचित मालूम होता है। आखिर वह कौन हो सकता है ? राजाराम के विस्मय की भी सीमा न रही। वह बोला—

"काकाजी! क्या मुझे नही पहचान रहे है ? मैं राजाराम हू।"

दीनदयाल ने एक बार राजाराम को नख-शिख पर्यन्त देखा। सुहासिनी की समझ मे कुछ नहीं आया। वह शिला-प्रतिमा की भाति एकटक दोनो की तरफ देखती ही रही। दीनदयाल ने संभ्रम के साथ सुहासिनी से कहा—

"बेटी, इसको नही पहचानती! यह तुम्हारा फुफेरा भाई राजाराम है। पगली कही की ? जल्दी दरवाजा खोलो।"

सुहासिनी ने दरवाजा खोला। राजाराम और दीनदयाल

'हॉल' मे प्रवेश कर सोफे पर बैठ गए। सुहासिनी के यह समझने में देर नही लगी कि राजाराम घर से भागकर शायद मिलिटरी मे शामिल हुआ होगा।

"राजाराम, तुम कितने बदल गए हो ? मैं पहचान न सकी। बुरा न मानना।"

राजाराम ने हंसते हुए कहा—"इसमे बुरा मानने की क्या बात है ? लेकिन मामा-मामी और सरला कहा है ? कोई दिखाई नही देते। कही यात्रा पर तो नही गए ?"

सुहासिनी का गला भर आया। धीरे-धीरे वह सिसकिया लेने लगी। सुहासिनी को रोते देख दीनदयाल ने उसे समझाया-बुझाया और राजाराम को सारी कहानी सुनाई।

यह समाचार सुनते ही राजाराम का दिल काप उठा। असह्य दुःख को न रोक सकने के कारण वह भी रो पड़ा। उसे अपने मामा और मामी के स्नेह एव वात्सल्य की याद आई। वे दोनो उसे कितना प्यार करते थे। अपनी सन्तान की तरह मानते थे। आज वे होते तो उसे घर लौटा देखकर कितने खुश होते। उसने इस बात को भूलने की बहुत कोशिश की लेकिन वह भूल न पाया।

बचपन की ये सारी घटनाए वह सोचता रहा कि इतने में बूढा शकरन नायर सिनेमा से घर लौटा। 'हॉल' में प्रवेश करते ही उसने राजाराम को पहचान लिया। उसे इस बात की बड़ी खुशी हुई कि मार्ग भूला-भटका पथिक मानो वापस

सकुशल घर पहुंचा है। इस बात का उसे दु.ख भी हुआ कि राजाराम को देख अधिक प्रसन्न होनेवाले सोमनाथ और उनकी पत्नी इस ससार मे नही है। बूढ़े नायर के मनोपटल पर भूतकालीन ये सभी बाते चलचित्र की भांति एक बार घूम गई। उसने राजाराम को बचपन मे अपनी गोद में ले खिलाया था और उसीके हाथों मे वह बडा भी हुआ था। उसके घर से भाग जाने पर नायर को काफी क्लेश पहुंचा था। आज फिर जबकि उसे बिलकुल भूल ही गया था, अचानक अपने लोगो के बीच देख बड़ी प्रसन्नता हुई। राजाराम को देखते ही झपटकर उसके निकट पहुचा और गद्गद कंठ से पूछा—"छोटे बाबू, इतने दिनों तक कहां रहे ? तुम्हारे लिए हम सब बड़े परेशान रहे। बेचारी तुम्हारी मा कई महीनो तक अन्न-जल छोड़कर रोती-कलपती रही। तुम उसका एकमात्र सहारा हो। फिर तुम्हें देख वह कितनी खुश होगी। क्या माता से नहीं मिले ?"—बूढ़ा नायर एक सांस में कह गया।

"दादा, अभी-अभी कश्मीर से आ रहा हूं। कल सुबह अम्मा को देखने जरूर जाऊगा। विजयवाड़ा पहुंचते आठ बज गए। रामापुर के लिए इस समय कोई गाड़ी नही है।"

"अच्छा बाबू, हाथ-मुंह धो लो। अभी खाना परोसता हू। भूखे होगे।"—यह कहकर नायर रसोई की तरफ चला।

दीनदयाल, राजाराम और नायर की बातें सुनते मन ही

मन प्रसन्नता का अनुभव कर रहे थे। दीनदयाल भी राजाराम को बहुत चाहते थे। राजाराम को थका और कमजोर देख दीनदयाल को उसपर बड़ी दया आई। उन्होने राजाराम से कहा—"देखो बेटा, काफी वक्त हो गया है। खाना खा लो और आराम करो। फिर मिलेगे।" यह कहकर दीनदयाल अपने घर की तरफ चल पड़े। सुहासिनी ने भीतर पहुचकर भोजन का प्रबध किया। खाना खा चुकने के बाद नायर ने राजाराम के लिए बरामदे मे चारपाई लगा दी और आप जमीन पर सो गया।

राजाराम लबी यात्रा से काफी थक गया था। इसीलिए बिस्तर पर जाते ही उसकी आख लग गयी और कुछ ही क्षणो में वह गहरी निद्रा मे निमग्न हो गया।

६

धूल उड़ाती हुई मोटर गाड़ी रामापुर में सीतालक्ष्मी के घर के सामने रुक गई। राजाराम होलडाल और सूटकेस लिए अपने घर की ओर चल पडा। मिलिटरी पोशाक में किसी युवक को आते हुए देख सीतालक्ष्मी जोकि सूप में चावल लिए ककड़ बीन रही थी, निर्निमेष देखने लगी। मोटा चश्मा पहने हुए होने के कारण उस युवक की मुख-मुद्रा को वह पहचान नही पाई।

लेकिन जब उस युवक ने आकर उसके चरण छुए, तब उसके आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। सीतालक्ष्मी आखे फाड-फाड-कर उस आगतुक की ओर एक विचित्र दृष्टि डालकर देखती ही रही कि किसी राह जानेवाला यह युवक पागल तो नही हो गया है। लेकिन उस युवक का कठ-स्वर सुनकर वह आश्वस्त हुई कि यह और कोई नही, बल्कि उसीका खोया हुआ लाल है।

"मा, मुझे माफ करो। मैने बड़ी गलती की, तुम्हे तकलीफ पहुचाई। नायर से यह सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ कि तुम मेरी प्रतीक्षा मे अन्न-जल त्यागकर देहली को अपना निवास बना ज़िन्दगी काट रही हो। अब आगे तुम्हे कभी तकलीफ नही पहुचाऊगा, मा! मुझे माफ करो।"

सीतालक्ष्मी का कठ गद्‌गद हो उठा। उसकी आंखों से आनद-वाष्प छलकने लगे। दूसरे ही क्षण आनंदातिरेक मे उसने राजाराम को अपनी छाती से लगा लिया और फूट-फूटकर रोने लगी। माता और पुत्र कितनी देर तक वात्सल्य के सुख का अनुभव कर रहे थे, ज्ञात नहीं। हठात् मोटर गाड़ी का हार्न सुनकर माता-पुत्र विलग हुए।

राजाराम ने देखा कि उसकी माता का शरीर कंकाल मात्र रह गया है। हड्डिया उभर आई हैं। आंखे भीतर धंसी हुई हैं और उनकी ज्योति क्षीण हो गई है। उसे लगा कि उसकी मां जिन्दगी से निराश हो मृत्यु रूपी कगार के किनारे खड़े

ठूठ के समान है। इसका कारण वह खुद है। माता की कोख से जन्म लेकर उसकी गोद की शीतल छाया मे वह पला। पुरुष होकर भी बुढापे मे अपनी विधवा मा को सुखी नही बना सका। बल्कि उसे व्यथा ही पहुचाता रहा। इतना होते हुए भी उस वृद्ध माता ने उसकी शिकायत नही की। बड़े प्यार से गले लगाया। ओफ! माता कैसी क्षमाशील होती है! उसमे धरती के समान अपार स्नेह, उदारता एव सहनशीलता होती है। मा अपनी सतान के लिए कैसा त्याग और बलिदान करती है। इस संसार मे 'मा' न होती तो यह अब तक बया-बान हो गया होता। मानव मानवता से दूर हो पशु बन जाता। उसे अपनी माता की असीम ममता का अनुभव हुआ। लज्जा एव ग्लानि से उसका सिर झुक गया। विकल होकर एक बार वह ज़ोर से चिल्ला उठा—"मा, मुझे क्षमा करो, नही तो मैं पागल हो जाऊगा।"

"बेटा, चिन्ता न करो। होनहार होकर ही रहता है। पश्चात्ताप ही उसका प्रायश्चित्त है। मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि तुम सकुशल घर लौट आए हो।"

"अम्मा, मै कभी घर नही छोड़ूगा—भाग जाने का फल भोग चुका हूं। अगर मैं वह सारी कहानी सुनाऊ तो तुम रोती ही रह जाओगी।"

सीतालक्ष्मी ने बड़ी आतुरता और उद्विग्नता-भरे कठ से पूछा—"बेटा, क्या मै नही सुन सकती हूं? तुम अपनी मा को

नहीं सुनाओगे तो किसको सुनाओगे ?"

"मा, सुनाने में तो कोई उज्र नहीं, लेकिन सुनने पर तुम्हारा दिल फट जाएगा ।"

"कोई बात नही है, मैं अपने बेटे की दर्द-भरी कहानी सुनकर चार आसू गिरा सकू तो मेरा हृदय भी हल्का हो जाएगा ।"

"मां, तुम वह कहानी सुनकर ही दम लोगी । लो सुनो ।"

राजाराम ने अपनी रामकहानी शुरू की—

"सुहासिनी के इण्टरमीडिएट में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के उपलक्ष्य में चाय-पार्टी का जो इन्तजाम किया गया, उसमे बड़े-बड़े अफसर, वकील, डाक्टर, प्रोफेसर तथा शहर के प्रतिष्ठित सज्जन आए थे । उन सबने सुहासिनी को बधाइया दीं, उसकी प्रशंसा की । लेकिन मेरा उपहास किया । मुझे अवहेलना की दृष्टि से देखा । मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया मानो मैं कुछ नही हू, परीक्षा पास करना ही उनकी दृष्टि मे मानव-जीवन का महान लक्ष्य है ।

उनके व्यवहार ने मेरी सुप्त मानवता को जगाया । मेरी अन्तरात्मा रो पड़ी । पाच बार इण्टरमीडिएट में अनुत्तीर्ण होने की मुझे ग्लानि हुई । मुझसे छोटी तथा एक लड़की ने इतनी कम उम्र में प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त किए । उससे बड़ा और पुरुष होकर भी कम से कम उत्तीर्णता के अंक भी प्राप्त नही कर सका । इसका कारण मेरी समझ में नहीं आया कि मेरे

फेल होने मे दोप मेरे दिमाग का है अथवा शिक्षकों का। जो भी हो उन्ही परिस्थितियों में सुहासिनी ने प्रथम श्रेणी प्राप्त की है। इसपर मुझे वडा क्षोभ हुआ और मै एक मिनट के लिए भी वहा रह नही सका। चाय-पार्टी के समय लोगो ने हंसते-हंसते जो बाते की और जो अट्टहास किया, वह मुझे लगा कि मेरा उपहास किया जा रहा है। मै क्षण-भर उद्विग्न-सा खड़ा रहा और दूसरे ही क्षण भाग खडा हुआ।"

"वेटा, भागकर तुम कहा गए?"—सीतालक्ष्मी ने पूछा।

"मा, मैं नही जानता कि मेरे पैर मुझे कहा-कहा घसीटकर ले गए। लेकिन आखिर मैंने अपने को स्टेशन मे खडा हुआ पाया। मै कितनी देर तक प्लेटफार्म पर इधर-उधर चक्कर लगाता रहा, मुझे मालूम नही। मै प्लेटफार्म पर खडा-खडा देखता ही रहा कि सामने जी. टी. ऐक्सप्रेस धुआं छोडती स्टेशन पर आ पहुंची। मैं एक डिब्बे में जाकर बैठ गया। मेरा दिल और दिमाग एकदम शून्य था। दूसरे दिन दोपहर के समय टिकट-कलेक्टर ने मुझसे टिकट मांगा। टिकट न पाकर मुझे गाड़ी से उतार दिया और स्टेशन मास्टर के हवाले कर दिया। स्टेशन मास्टर ने मुझे चेतावनी देकर छोड दिया। मै नागपुर की गलियों मे भटकता धूल छानता रहा। जब भूख लगती, कुछ खा लेता; कही नल दिखाई देता तो पानी पी लेता। एक-दो दिन तक किसी सराय और स्टेशन पर अपना अड्डा जमाता रहा। एक दिन भटकते-भटकते मैने देखा कि 'रिक्रूटिंग

आफिस' के सामने कई युवक खडे मिलिटरी में भर्ती हो जाने की चर्चा कर रहे थे, मै भी उनमे शामिल हो गया। हम सब को मिलिटरी में भर्ती करके दूसरे दिन वहा के अफसर ने दिल्ली भेज दिया।"

"दिल्ली, क्या कहा बेटा, दिल्ली देखा, सुनते है वहा पर राजेन्द्रबाबू, नेहरू आदि बडे-बडे लोग रहते हैं। उन सबको देखा, बेटा ?"

"नही मा, उन्हे देखने का मौका ही कहा था ? दिल्ली से हमको सीधे कश्मीर भेजा, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की सरहद पर हमारा डेरा पडा हुआ था। मा, सर्दी मे हमारा शरीर काप जाता था, उगलिया ठिठुर जाती थी। कभी-कभी कई दिन तक हम नहा भी नही पाते थे। हमेशा डर लगा रहता था कि न मालूम कब दुश्मन हमला कर बैठे। कभी-कभी रात-भर गोलिया छूटती थी। कभी-कभी तो अचानक दुश्मन हमपर धावा बोल देते और जो हाथ लगता उसे उठा ले जाते।"

"बेटा, तुम तो कभी दुश्मन के हाथ नही पड गए ?"

"क्यो नही मा, एक बार मै रात के समय पहरा दे रहा था, कि दुश्मन ने गोली दाग दी। मै बेहोश होकर गिर पड़ा। वे मुझे उठाकर ले गए, लेकिन कई घंटे तक मुझे होश नही आया। फिर उन्होने मुझे मरा हुआ समझकर छोड दिया।"

"तो फिर तुम कैसे चंगे हो गए ?"

"दूसरे दिन सुबह मेरे अफसर ने मेरी तलाश कराई। और अस्पताल मे मेरी चिकित्सा कराई। ज्योही मै चगा हुआ त्योंही ड्यूटी मे दाखिल हुआ।"

"क्या तुम अब तक कश्मीर मे ही रहे ?"

"नही मा, कुछ समय के बाद मुझे कागो भेज दिया, वहा पर हमने जो तकलीफें झेली उनके स्मरण-मात्र से अब भी मेरा दिल दहल उठता है। मेरे रोंगटे खडे हो जाते है, और मेरी आखों में खून के आंसू छलकने लगते है।"

"क्यों ? ऐसी कौन-सी तकलीफे झेली ?"—विकल हो सीतालक्ष्मी ने पूछा।

"मा, तुम नहीं जानती, कागो के निवासी मनुष्य नही, राक्षस है, राक्षस। उनके दिल मे दया, स्नेह, प्रेम, करुणा नामक कोई चीज नही है, वे पल-भर में बिगड जाते है। दूसरे ही क्षण में मार बैठते है। उनके जीवन का अपना न कोई लक्ष्य है और न सिद्धात ही। हमेशा जान का खतरा वहा बना रहता है। वे हिंस्र पशुओ से भी भयानक और दानवो से भी कहीं अधिक निर्दयी हे। उनके बीच निवास करना मौत को निमत्रण देना है। कितने भी चौकन्ने रहें, उनसे बचना मुश्किल है। आज तक जान हथेली पर लिए मौत की छाया को पल-पल-भर देखते, गम के आंसू पीते हमने एक-एक क्षण गुजार दिया है। वहा पर एक क्षण काटने मे हमने युग का अनुभव किया। हमारी सास उखड जाती थी। हमारी देह शिथिल

पड़ती थी, सदा जागते-जागते आखे फटी-सी जाती थी, क्या बताऊ? न ठीक से खाना और न ठीक से सोना। दुख ही दुःख झेला। एक मिनट की भी शान्ति हमे नही मिली।

हमने कभी नही सोचा था कि अपनी मातृभूमि के दर्शन करेगे, एक दिन अचानक हमे आदेश मिला कि हमारा पूरा बटालियन भारत भेज दिया जा रहा है। हमने बड़ी खुशिया मनाई। लेकिन भारत पहुचते ही अचानक आबहवा के बदलने के कारण मै बीमारी का शिकार हुआ। कई दिन तक बिस्तर पर रहा। लेकिन मेरी तन्दुरुस्ती इतनी अच्छी नही हुई कि मै पुन. मिलिटरी मे कार्य कर सकू, अतः मुझे घर भेज दिया गया।"—राजाराम ने अपनी कहानी समाप्त की।

अपने पुत्र की दर्द-भरी कहानी सुनकर सीतालक्ष्मी ने बड़ी व्यथा का अनुभव किया और दो-चार आसू गिराए।

७

शाम का सुहावना समय, मद्रास के 'मेरीना बीच' मे एक मधुर कोलाहल सुनाई दे रहा है। दूर तक फैला हुआ रेतीला मैदान लोगों से इस प्रकार भरा हुआ है कि कही इच-भर की जगह खाली नही दिखाई दे रही है। रंग-बिरंगे वस्त्र पहने

लोग नुमाइश के खिलोनों की भाति नजर आ रहे है। बगाल की खाड़ी जोर से गरजन करती हुई मानो अपने क्रोध को फेन के रूप मे उगलकर किनारे लगा दे रही है। उत्तुग तरगें तट से टकराकर चूर-चूर हो रही है। बच्चे-बूढ़े व युवक-युवतिया अपनी धोतिया तथा पैंट घुटनो तक ऊपर खीचे समुद्र-जल मे उतरकर आनद ले रहे हैं। कई परिवार अपने बच्चों को लिए हुए बालू में बैठे समुद्र की हवा का सेवन कर रहे हैं। नो बच्चे शख और कौडियों को बटोरने और घरौंदे बनाने मे मजा ले रहे है।

सागर की लहरो पर अपनी नाव के साथ झूलते हुए पानी मे जाल फेंके मछुए मछलियों को पकडने मे निमग्न है। सूर्यास्त हो जाने के कारण एक-एक करके वे अपने दिन-भर के परिश्रम से प्राप्त मछलियो को ले किनारे की ओर लौट रहे है। समुद्र के किनारे ही ताड़ के पत्तो से बनी झोपड़ियो से बाहर निकलकर मछुवाइने अपने-अपने आदमियो की प्रतीक्षा कर रही है। झोंपड़ियों के आसपास इधर-उधर फटे हुए जाल व टूटी नावे पड़ी हुई है।

ससार-भर मे दूसरा स्थान प्राप्त 'मेरीना बीच' से लगी मेरीना सड़क दूर तक सागर और नगर के बीच एक विभाजन रेखा-सी बनी फैली हुई है। सडक के दोनों तरफ बिजली की बत्तियां अपनी रोशनी फैला रही है। कोलतार की सड़कें विद्युत-कान्ति से चमचमाती नजर आ रही हैं। सड़क पर

आने-जानेवाली विभिन्न प्रकार की मोटर कारे विद्युल्लता की भाति चमककर गायब होती जा रही है। उसी सडक के किनारे कतारों में मोटर गाडिया खडी हुई है। 'मेरीना बीच' के केन्द्र-बिन्दु पर 'ऐक्टोरियम', 'मेरीना होटल' तथा 'स्विम्मिग पूल' पर लोगो की भीड़ लगी हुई है। होटल की छत खाने-पीनेवालो से भरी हुई है। 'स्विम्मिग पूल' मे तैराक कूदते-तैरते डुबकिया लगाते आनद ले रहे हैं। पास में ही छोटे-छोटे बच्चे किलकारिया भरते नाना प्रकार के खेल खेल रहे है। वही पर स्थित रेडियो से फिल्मी संगीत सुनाई दे रहा है। दूर तक फैला हुआ जन-समूह कुभ मेले का स्मरण दिला रहा है।

चने, मूगफली, आइसक्रीम इत्यादि के साथ खोमचेवाले चिल्ला-चिल्लाकर लोगों का ध्यान अपनी तरफ आकृष्ट कर रहे हैं। लोग दलों मे बंटकर अपने किसी अनुकूल स्थान पर हृदय की गाठें खोलते हुए जीवन और जगत् की चिरंतन समस्याओं का समाधान ढूढने मे तत्पर है। कहीं प्रेमी-प्रेमिकाए है तो कहीं पति-पत्नी और कहीं मित्र-मंडलियां जमी हुई है। वे सब उस सुहावने समय पर उचित समस्याओ की चर्चा में निमग्न है।

मेरीना सडक पर मद्रास विश्वविद्यालय की इमारतो के सामने देवीप्रसादराय चौधरी द्वारा निर्मित भव्य शिला-प्रतिमा है। उसके अनति दूर मे एक सिमेंट-बेच पर बैठे एक

युवती और एक युवक वार्तालाप कर रहे है।

युवक हठात् बोल उठा—"कल की भाषण-प्रतियोगिता मे तुमने कमाल किया। मुझे आशा ही नही थी कि तुम इतना अच्छा बोलोगी।"

"मैने क्या कमाल किया ? दमयती का भाषण सुनते तो शायद तुम यह नही कहते"—युवती ने युवक की आखो मे देखते हुए कहा।

"क्यो नही सुना ? मै तो अन्त तक था ही। उसकी भाषा मे वह मादकता नही थी जो श्रोताओं को मुग्ध कर सके। साथ ही आवेश अधिक व विषय-प्रतिपादन का क्रम बेढगा था।"

"तुम यो ही मेरी प्रशसा मे तो ये बाते नही कह रहे हो ?"

"देवी की स्तुति करके यह दास क्या पाएगा ?"

युवती हंस पड़ी। युवक के निकट सरककर कहने लगी—"ओहो ! आज मालूम हुआ कि देवियो की भी उपासना तुम किया करते हो और दास बने फिरा करते हो !"—युवती के कटाक्ष पर युवक सहम उठा। फिर अपने को सभालते हुए उसने कहा—"तुमने मेरा मतलब नही समझा। तुमने अपने भाषण में नारी को इतना ऊचा उठाया मानो स्वतत्र भारत में पुरुष का स्थान कुछ नही है। क्या नारी-समाज मे वे आदर्श देखने को मिलते है जिन्हे तुमने प्रतिपादित किया था ?"

"पुरुष ने सदा नारी को अपनी दासी माना है। कभी

उसे देवी के रूप मे देखने का प्रयास नही किया है ।"

"पुरुष कैसे देखते ? नारी मे सर्वदा उन गुणो का अभाव है । नारीवर्ग ऊपर उठने का तो प्रयास नही करता, लेकिन केवल अधिकार-मात्र चाहता है । इसीलिए पुरुष की सद्भावना वह पा नही रहा है ।"

"पुरुष मे अधिकार-दाह अधिक है । नारी के उत्तम गुणो का वह मूल्याकन नही करता है । विवाह होने तक नारी के प्रति पुरुष के मन मे जो भावना रहती है, विवाह के बाद पुरुष अपनी सहधर्मिणी के साथ वह भावना नही रखता है । यही सघर्ष का मूल कारण होता है ।"

"तुम यह भूल करती हो । पुरुष परिवार के भीतर अपनी बहन, पत्नी व माता के साथ कैसा स्नेह रखता है और उनके लिए क्या-क्या त्याग करता है, यह जानती तो तुम कदापि पुरुषो की ऐसी आलोचना नही करती ।"

"क्यो नही जानती ? नारी स्वभावत. स्नेह एव श्रद्धा की प्रतिमूर्ति है । उसमे दया, ममता आदि कोमल भावनाए काफी मात्रा मे है । वह स्नेह और विश्वास की भूखी होती है । जिसका वह विश्वास करती है उसके लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिए सदा सन्नद्ध रहती है । पुरुष स्वार्थी है । इसलिए वह नारी की महिमा को पहचान नहीं पा रहा है ।"

"नारी उच्छृंखल होती है । उसमे हठ की मात्रा अधिक होती है । छोटी-छोटी बातो मे भी जिद्द करने लगती है ।

यही पुरुष के लिए सिर-दर्द की बात है। हर बात मे हस्तक्षेप करके पुरुष के क्रोध का कारण बन जाती है। सच पूछा जाए तो नारी की मनोवृत्ति अत्यत सकुचित होती है। किसी समस्या को सुलझाने मे वह विवेक से काम नही लेती बल्कि दुराग्रह से उसे उलझा देती है। इसलिए पुरुष खीझ उठता है। अलावा इसके वह जिस ढग से सोचती है, उसीके अनुरूप पुरुष को चलाना चाहती है। यही पर नारी पुरुष की दृष्टि मे गिर जाती है।"

"तब तुम्हारी माता के प्रति भो तुम्हारो यही भावना है क्या ?"

"मै किसी व्यक्ति-विशेष को लेकर बोल नही रहा हू। यह समस्या समस्त नारी-वर्ग को लेकर उत्पन्न होती है। मै यह नही कहता कि सभी नारिया ऐसी ही होती है। उनमे जहा देविया है, वही चडिया भी हैं। माता होने-मात्र से उपर्युक्त गुणोवाली नारी का भी आदर हम कर नही पाएगे। ऐसी नारियां प्रत्येक परिवार में भी हो सकती है। तुम्हारे परिवार के पुरुषों के प्रति तुम्हारी क्या धारणा है ?"

युवती के मनोपथ पर उसके पिता का चित्र अकित हो क्रमश इतना विशाल होता गया, कि आखिर लगा मानो वह इस समस्त विश्व मे छा गया हो। इस स्मृति से युवती की बड़ी-बड़ी आखे कमल-पत्रो पर जमी ओस की बूदों की भाति सजल हो उठी।

"मेरे परिवार मे एक ही पुरुष थे। वे मेरे पिता थे। वे मनुष्य नही, देवता थे, देवता! ऐसे पुरुषो की हम जीवन-पर्यंत पूजा करे तो भी हम उनका ऋण नही चुका सकते। वे प्रेम और वात्सल्य के सागर थे। उनका दिल मोम के समान मुलायम, सागर के समान विशाल था। उन्हे सभी चाहते थे और वे सभीको चाहते थे। ऐसे लोग लाखो मे एक होते हैं।"

"यह क्यों नही सोचती, हजारो और सैकडों मे भी एक हो सकते है?"

"तुम अपने पक्ष के समर्थन मे लग गए हो।"

"नही, ऐसी बात नही। प्रत्येक पिता अपनी सतान से सभवतः ऐसा ही प्रेम करता है।"

"नारिया भी अपने भाई, पति और पिता से ऐसे ही स्नेह रखती है। यह क्यो सभव नही?"

"इन सबका समाधान मैने पहले ही दे दिया है......"

"शेष प्रश्नो का समाधान चलते-चलते हम देगे। उठो, चलो, नौ बजने जा रहा है"—विनयमोहन ने कहा।

वह युवती और युवक वार्तालाप मे इतने निमग्न थे कि विनयमोहन का आना उन लोगों ने देखा नहीं था। दोनों ने सिर उठाकर देखा कि पास मे ही विनयमोहन और उनके कुछ साथी खड़े हुए है। उनमें एक ने उस युवक से कहा—"सुरेश, जल्दी उठो, मेस मे भोजन नहीं मिलेगा।"

"हां भाई, ठीक कहते हो"—यह कहते हुए सरला की तरफ मुड़कर सुरेश बोला—"चलो, सरला ! बातो मे हमें समय का भी खयाल न रहा ।"

सरला उठी । सब लोग एक साथ फुटपाथ पर चलने लगे । विश्वविद्यालय की इमारत की घडी ने नौ बजा दिए । दूर पर 'हाईकोर्ट बिल्डिंग्स' पर स्थित जहाज-निर्देशक प्रकाश-स्तम्भ ने अर्धचन्द्राकार मे अपना तेजपूर्ण प्रकाश फेका, मानो वह इन लोगों के घर जाने के लिए सिगनल दे रहा हो ।

८

"बेटी, क्या सरला की कोई चिट्ठी आई ?"—घर में प्रवेश करते हुए दीनदयाल ने पूछा ।

सोफा-सेट पर तकिए लगाते हुए सुहासिनी ने कहा—"कल ही एक चिट्ठी आई थी ।"

दीनदयाल ने बडी आतुरता से पूछा—"कुशल है न, क्या लिखा है ?"

"लिखा है कि वह मन लगाकर पढ़ रही है । कालिज की भाषण-प्रतियोगिता मे उसे प्रथम पुरस्कार मिला है ।"

"कहा भी है—होनहार बिरवान के होत चीकने पात—बचपन से ही वह बहुत होशियार है । वह समस्याओं का हल

इस खूबी के साथ ढूढती है कि हम जैसे अनुभवी भी उसके सामने आश्चर्यचकित हो जाते है। यदि वह अपनी इस बुद्धि और सूक्ष्मग्राहकता का उचित मात्रा मे पोषण करे तो तुम्हारे पिता का यश कायम रखने मे समर्थ हो सकती है।"

अपने पिता की खूबियो की प्रशसा सुनकर तथा अपनी बहन की विशिष्टता की प्रशसा सुनकर सुहासिनी के नेत्र गीले हो गए। उसका हृदय अपूर्व आनद से उछल पडा। उसे अपने बचपन के वे दिन याद आए जब कि दोनों बहने एकसाथ सभी कार्यो मे होड़ लगाकर उत्साह दिखाती थी। प्रत्येक प्रसग मे सरला बाजी मार ले जाती थी। और माता-पिता तथा आगत सज्जनो की तारीफ सरला पा जाती थी। इससे कभी-कभी सुहासिनी के मन मे सरला के प्रति ईर्ष्या की भावना भी उत्पन्न हो जाती। परतु दूसरे ही क्षण मे वह यह सोचती कि वह और कोई नही, बल्कि उसकी सहोदरी है, इसलिए यह उसके लिए गौरव की बात है। वह बडी होने के कारण अपनी बहन से काफी सहानुभूति रखती थी। कभी-कभी सरला से छोटी-मोटी भूल भी हो जाती तो वह अपने पिता के सामने यह मान लेती थी कि वह भूल करनेवाली सरला नही, बल्कि वही है।

एक दिन की बात है। सोमनाथ अपनी कीमती कलाई-घड़ी मेज पर रखे नहाने स्नानागार में गए। समय पाकर सरला ने घडी अपनी कलाई में बांध ली। खेलते-खेलते भूल से

उसे फोड दिया। जब उसे अपने पिता के क्रोध का स्मरण आया तो चुपचाप सहमी हुई दबे पाव घर मे पहुंची। मेज पर घडी रखकर चपत हो गई। सोमनाथ ने आकर देखा, घडी फूटी हुई है। उन्होंने गरजते हुए नायर से पूछा। लेकिन नायर रसोई से बाहर निकला तक नही था। यह जानकर सोमनाथ ने सुहासिनी से पूछा। पहले सुहासिनी ने सच्ची बात बतानी चाही, लेकिन उसकी आखो के सामने अपनी बहन की याचना-भरी और हिरणी की-सी सजल आंखे दिखाई दी। सुहासिनी पशोपेश मे पड़ गई। उसके दिल मे सच और झूठ के बीच सघर्ष होने लगा। वह अपनी बहन को बचाना चाहती थी और साथ ही अपने को दोषी स्वीकार करने मे भी उसकी अन्तरात्मा विद्रोह कर रही थी। उसके सामने समय नही था। पिताजी प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा मे घूर-घूरकर देख रहे थे, तुरन्त उसने साहस करके गभीर हो कहा—"मुझसे यह भूल हो गई है।" बस, सोमनाथ की छड़ी सुहासिनी की पीठ पर नृत्य करने लगी। कोमल शरीर की सुहासिनी थोडी देर मे जोर से चिल्लाकर धम से नीचे गिर पड़ी। उसके बाद चार-पाच दिन तक उसके घावों पर मरहम-पट्टी करनी पडी थी।

उस दिन की रात को जब दोनों बहने एक ही खाट पर लेटी हुई थी और घर के सब लोग सो रहे थे, सरला की आंखों में नीद नही आई। उसने उठकर बत्ती जलाई। अपनी बहन के घावो को देख अपने आसुओ से उन्हे तर करने

लगी। उस दिन सरला को इतनी ग्लानि हुई कि अपनी बहन की गोद मे मुह छिपाकर रो-रोकर उसने अपने हृदय को हल्का कर लिया था।

इसकी स्मृति-मात्र से सुहासिनी को सरला के सामीप्य का अनुभव हुआ।

उसने दीनदयाल की तरफ देखते हुए कहा—"काका, मुझे भी सरला पर बड़ी-बडी आशाए है। वह चचल है, पर बहुत ही अकलमद। यदि वह अपनी चचलता को पढाई मे लगा सकेगी तो अवश्य चमक जाएगी।"

"हा बेटी, मै उसमे ये लक्षण देख रहा हू। अनुभवहीनता के कारण जल्दबाजी मे आकर वह कुछ कर डालती है, लेकिन जब वह उसे समझ लेती है, तब पछताती भी है। समय ही उसे पाठ पढाएगा। पूछना भूल गया—वह कब छुट्टी पर आ रही है ?"

"अगले महीने मे आनेवाली है, काका! दो सौ रुपए भेजने को कहा है। आज इतवार है। कल मै आपके पास रुपए भेजूगी। मनीआर्डर कीजिएगा।"

"अच्छा बेटी, ऐसा ही।"—यह कहकर वे उठने ही लगे कि इतने मे फाटक के सामने एक घोड़ा-गाडी आ रुकी। उसमे राजाराम और सीतालक्ष्मी उतरे। गाड़ीवाला सामान लेकर भीतर पहुचा।

सुहासिनी अपनी फूफी और फुफेरे भाई को देख बहुत

प्रसन्न हुई। जबसे उसके पिता का देहात हुआ है तबसे वह एकात मे अशाति का अनुभव करती थी। सदा वह अपने लोगो के बीच मे रहकर उस दुख को भूल जाना चाहती थी। उसकी फूफी उसके पिता की मृत्यु के समय आई थी। इतने दिनो बाद फिर उन्हे देखने के कारण सुहासिनी बहुत आनदिन हुई। क्योकि फूफी ने ही उसे उपदेश देकर तथा ढाढम बधाकर जीवन मे आशा और विश्वास को पैदा किया था। दीनदयाल और फूफी न होते तो सुहासिनी या तो पागल हुई होती अथवा आत्महत्या कर ली होती। यही कारण है कि वह इन दोनो को अपने आत्मीय मानती है।

दीनदयाल ने सीतालक्ष्मी और राजाराम से कुशल-प्रश्न पूछा। उन्हे खा-पीकर आराम करने की सलाह दे वे अपने घर चले गए। सुहासिनी अपनी फूफी से बड़ी देर तक इधर-उधर की बाते करती रही। इसी बीच मे शकरन नायर ने स्नान-पान का प्रबन्ध किया।

९

दुपहर का समय था। राजाराम, सीतालक्ष्मी व सुहासिनी भोजन समाप्त कर बरामदे मे बैठे वार्तालाप करते हुए ताबूल-सेवन कर रहे थे। डाकिये ने आकर सुहासिनी के हाथ

में एक रजिस्ट्री चिट्ठी देते हुए कहा—"इस रसीद पर हस्ताक्षर कीजिएगा।"

सुहासिनी ने हस्ताक्षर करके डाकिये को भेज दिया। रजिस्ट्री को देख उन सबकी जिज्ञासा बढ गई। सुहासिनी ने बडी आतुरता से लिफाफा खोलकर देखा। उसमे एक चिट्ठी थी, जिसपर केन्द्रीय सरकार की मुहर थी। वह चिट्ठी टाइप की हुई थी। उसके साथ पचास हजार रुपए का एक चेक था। सुहासिनी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसकी समझ मे नही आया कि उसके नाम पर क्यो यह भेज दिया गया।

सीतालक्ष्मी ने चिट्ठी पढकर सुनाने का अनुरोध किया। सुहासिनी ने जोर से पढना शुरू किया। उसका साराश था—

"भारत सरकार के एक मेधावी अफसर और उद्योग विभाग के सचिव श्री सोमनाथ की असामयिक मृत्यु पर सरकार खेद प्रकट करती है। उनकी महान सेवाओं से उद्योग विभाग काफी लाभान्वित हुआ है। उनकी अनुपम सेवाओ तथा सरकारी कार्य पर यात्रा के समय उनके निधन होने से उनके परिवार को जो अपार क्षति पहुची है, उसकी कुछ अंशों में ही सही, सहानुभूतिपूर्वक पूर्ति करने के विचार से केन्द्रीय सरकार उनके कुटुम्बियों को तीस हजार रुपए की आर्थिक सहायता प्रदान कर रही है।

"सोमनाथ ने अपने सेवाकाल के भीतर संरक्षण कोष मद्दे जो रकम जमा की थी, उसके साथ सरकारी अंश भी मिला-

कर कुल बीस हजार रुपए की राशि हो गई है। अत: दोनो अशो की कुल रकम पचास हजार रुपए चेक के रूप मे भेजे जा रहे है। प्राप्ति की सूचना अपेक्षित है। इस चेक को भुनाने के पश्चात उसकी सूचना तथा पचास हजार रुपए की रसीद रेवन्यू स्टैप के साथ अवश्य भेजे।"

चिट्ठी मे सोमनाथ की प्रशसा सुनते ही सीतालक्ष्मी को अपने भाई की स्मृति ताजा हो उठी। पल-भर के लिए वह विचलित हुई। अप्रयत्न ही उसके नेत्रो मे आसू छलक आए। उसे तुरन्त इस बात का ध्यान आया कि बगल मे ही सुहासिनी और राजाराम बैठे हुए है। उनकी तरफ आख उठाकर देखा कि वे दोनो रो रहे है। सीतालक्ष्मी ने अपने को सभालते हुए कहा—"रोते क्यो हो? अब रोने से वे थोडे ही वापस लौटने वाले है। यदि हम चाहते है कि उनकी आत्मा को शान्ति मिले तो हमे चाहिए कि उनके आदर्शो का पालन करे। वे अपने जीवन के भीतर तुम लोगो के सबन्ध मे जो स्वप्न देखते थे, उन्हें साकार बनाकर दिखावे। तभी वे चाहे जहा भी हो, हमे देख प्रसन्न होगे।"

"मा, मै जितना भी मामा को भूलने का प्रयत्न करता हू, वे उतने ही मेरे निकट आते जाते है। ऐसे पुरुष समाज मे बहुत कम होते है जो कि अपने परिवार के दायरे को लाघकर सभी प्राणियो को समान समझते हों। वे अपने आचरण और आदर्शो से सबके प्यारे हो गए है। इसलिए जब कभी

इनकी याद आती है बरबस आखो से आसू बरस पड़ते है—"
राजाराम ने अपने आसू पोछते हुए कहा ।

सुहासिनी को सिसकिया भरते देख सीतालक्ष्मी ने उसका सिर निहारते हुए समझाया—"बेटी, रोओ मत, यह दुनिया ही अस्थिर है। हम सबको भी एक न एक दिन इस संसार से विदा लेनी होगी । ऐसी हालत मे रोते-कलपते हम अपना समय नष्ट करेंगे तो अपना कर्तव्य नही कर पाएंगे । तुम समझदार लड़की हो । तुमको यह सब बताने की जरूरत ही नही ।"

"नही फूफी, मै कभी नही रोऊगी । मै अपने को रोकने की बहुत कोशिश करती हू, लेकिन पिता के स्मरण-मात्र से मेरा दिल सीमा लाघकर उमड़ पडता है और उसमे बह जाती हू ।"

"तुमने मुझसे वादा भी किया था कि आगे कभी नही रोऊगी । मैने नही सोचा था कि तुम्हारा हृदय इतना दुर्बल है"—उस रास्ते से गुजरनेवाले दीनदयाल ने "शाति-निलयम" मे प्रवेश करते हुए कहा ।

अचानक दीनदयाल को देख सुहासिनी चौक उठी । आचल से आसुओ को पोंछते हुए कहा—"नही काका, मै रो नही रही हू ।"

"तुम लोगों की आखे ही बता रही है । सफाई देने की क्या जरूरत है ?"—सीतालक्ष्मी की ओर देखते हुए दीनदयाल

ने कहा—"तुम भी उनमें शामिल हो गई हो? आखिर औरत औरत ही है, चाहे वह उम्र मे बडी क्यो न हो। तुमको चाहिए था कि उनको ढाढस बधाती।"

"ऐसी बात नही भाई। अभी-अभी सरकार से पचास हजार रुपए का एक चेक आया था। उसमे एक चिट्ठी भी थी। भाई की प्रशसा की गई थी। उस चिट्ठी को पढते-पढते हम सब अपने ऊपर नियंत्रण नही कर सके"—सीतालक्ष्मी ने सफाई दी।

दीनदयाल पास मे पडी हुई कुरसी पर बैठे। सुहासिनी ने चिट्ठी उनके हाथ मे दी। चिट्ठी पढते ही दीनदयाल का मुह तेज-विहीन होने लगा। चिट्ठी पढना समाप्त कर गहँरी सास लेते हुए कहा—"आखिर बहुमूल्य मानवजीवन का मूल्याकन कागज के टुकडो पर किया जाने लगा है। सोमनाथ जीवित होते तो लाखो और करोड़ों रुपयो से भी उनका मूल्याकन नहीं हो सकता। मैं जानता हू, उनके जीवन मे कई ऐसे अवसर आए जबकि उनके चरणो पर हजारों व लाखों रुपयो की थैलिया रखकर उनसे याचना की गई थी कि हमको कारखाना अथवा उद्योग खोलने की अनुमति दिलाई जाए। लेकिन उस महामानव ने एक कौड़ी भी ग्रहण नही की थी। वे चाहते तो अब तक करोड़ो रुपयो की सपत्ति के स्वामी होते। उनकी संतान दर्जनो पीढियों तक आराम से उस संपत्ति उपभोग करती। परन्तु वह प्रतिष्ठा उन्हे प्राप्त नही होती

जो कि आज उन्हे प्राप्त है ।

"ऐसे महान व्यक्ति का हमारे बीच मे रहना हम लोगो के लिए भी गौरव की बात है । उनसे मैने कई बाते सीखी । जीवन-पर्यन्त मै इसके लिए कृतज्ञ हू, रहूगा । तुम लोग धन्य हो, ऐसे व्यक्ति की सतान या बहन हुई ।

"मैने पहले भी कहा था कि व्यक्ति के अभाव मे आसू बहाना उतना अच्छा कार्य नही जितना कि उनके आदर्शो पर चलना । हमेशा उनकी स्मृति मे रोते रहेगे तो जीवन नीरस हो जाएगा । हम अपने कर्तव्य करने से वचित हो जाएगे । जो व्यक्ति अपना कर्तव्य नही करता है, वह उत्तम नागरिक भी नही कहा जाएगा । इसलिए मै चाहता हू कि आगे कभी तुम लोग इस प्रसग को लेकर दु खी न हो । हा, उसके आदर्शो का अवश्य पालन करने की भावना हृदय मे रहे ।"

दीनदयाल के विचारो से तीनो बहुत प्रभावित हुए । उन सबने वचन दिया कि उनके उपदेशो का पालन किया जाएगा ।

सीतालक्ष्मी ने दीनदयाल को धन्यवाद देते हुए कहा—"भाई, वह चेक ले जाकर बैंक मे सुहासिनी के नाम पर जमा कीजिए ।" फिर सुहासिनी की ओर मुखातिब होते हुए बोली—"बेटी, चेक काकाजी के हाथ मे दे दो ।" सुहासिनी ने वह चेक दीनदयाल के हाथ मे दे दिया । दीनदयाल राजाराम को साथ लेकर चेक बैंक मे जमा करने के लिए चले गए ।

ज़िन्दगी की राह

१०

शयन-गृह मे हरी बत्ती जल रही है। कमरे की दीवारे नीले रग से पुती हुई है। बत्ती की मद रोशनी मे सारा कमरा एक विचित्र अनुभूति का अनुभव करा रहा है। कमरे मे एक तरफ मेज पर कुछ पुस्तके रखी हुई है। दूसरी तरफ फूलदान, ऐशस्ट्रे, चुरुट का डिब्बा, कलमदान व दवात रखे हुए है। कमरे के बीच मे एक रोजवुड की सुन्दर चारपाई है जिसपर डनलप के गद्दे व तकिए लगाए हुए है। उसपर मसहरी के भीतर एक विशालकाय व्यक्ति लेटे हुए बार-बार करवटे बदल रहा है। उसके मुख-मडल पर कभी हसी और कभी विषाद की रेखाए खिचती जा रही है। कभी उसपर गहरी झुरिया दिखाई देती तो कभी एक अनूठी चमक।

रात गहरी होती गई। सारा शहर सुनसान दिखाई दे रहा था। धीरे-धीरे वायु प्रचड हो खिडकी के पर्दो पर थपेड़े मारने लगी। हवा मे एक विचित्र कंपन था मानो कोई आफतो का मारा अपनी असहनीय व्यथा को रो-रोकर व्यक्त कर रहा हो। वायु के प्रचड वेग से धक्के खाकर बगले के सामने स्थित अशोक वृक्ष अपनी घनी टहनियों को फैलाए इस प्रकार झूम रहे है मानो अपने विशाल एव घने केशो को फैलाए नृत्य करनेवाले भूत हो।

बाहरी प्रकृति के उन भयंकर दृश्यो से अनभिज्ञ हो

कमरे के भीतर का वह व्यक्ति खुर्राटे लेते गहरी निद्रा में निमग्न है।

किसीके दरवाजे खटखटाने की आवाज हुई। सोनेवाला व्यक्ति जाग पडा। अब भी दरवाजे पर कोई दस्तक दे रहा था। बिस्तर पर पडे-पड़े आखे मूदे उस व्यक्ति ने पूछा—"कौन है ?"

बाहर से कोई जवाब नही आया। उस व्यक्ति ने फिर से पुकारा। इस बार भी कोई उत्तर नही मिला। लेकिन आवाज जारी थी। कोई उपाय न पाकर वह व्यक्ति बडे आलस्य से अगड़ाइया लेते हुए उठ बैठा और भारी कदमो को बढाते हुए दरवाजे के निकट पहुचकर द्वार खोला। सामने कोई व्यक्ति नही था। इधर-उधर झाककर देखा। लेकिन कोई दिखाई नही दिया। कोई आहट पाकर सामने देखा, तो चार-पाच फुट की दूरी पर कोई गहरी छाया हिलती-सी नजर आई। व्यक्ति काप उठा। उसका सारा शरीर पसीने से तर हो गया। उसके मुह पर भय की रेखाए खिच गई। वह रोमाचित हो उठा।

ठीक उसी समय उसकी पीठ पर कोई शीतल स्पर्श हुआ। घूमकर देखा पीछे कोई नही था। वह घबराया। चिल्लाना ही चाहता था कि किसीने अपने हाथो से उसका मुह बद किया। इस बार उसके सभी अवयव भय से कांपने लगे। ऐसा

मालूम होता था कि उसका दिल जोर से धड़क रहा है। चार-पाच मिनट यही हालत रही तो उसके दिल की धड़कन ही बद हो जाएगी।

"घबड़ाते क्यों हो ? मैं हूं तुम्हारा मित्र।"

"तुम ! कौन हो तुम ? मुझे दिखाई नही देते ?"

"इतनी जल्दी भूल गए ? हां, आदमी के दूर होते ही लोग भूल जाते है। यही दुनिया की परिपाटी है।"

वह व्यक्ति चकित रह गया। सामनेवाले व्यक्ति का कठस्वर तो उसे चिरपरिचित-सा प्रतीत हो रहा है। वह उस आगन्तुक व्यक्ति से बोल उठा—"तुम दिखाई क्यो नही देते ? मै कैसे तुम्हें पहचान लू ?"

"भीतर चलो, मैं बताऊंगा, कौन हू। तुमसे कुछ जरूरी बातें करने आया हूं।"—यह कहते ही उस आगन्तुक ने उस व्यक्ति की गर्दन पर हाथ डालकर ढकेल दिया। वह धम्म से चारपाई पर गिर पड़ा। आगन्तुक ने कमरे के भीतर प्रवेश करके दरवाजा बद किया और चारपाई पर बैठ गया।

वह व्यक्ति और भी डरा हुआ-सा मालूम हो रहा था। इसलिए आगन्तुक ने उसकी पीठ पर अपना शीतल हाथ फेरते हुए कहा—"मै सोमनाथ हूं। डरते क्यो हो, दीनदयाल ! तुम मुझे देखकर कभी डरते नही थे। बहुत खुश हो जाते थे।"

सोमनाथ का नाम सुनकर दीनदयाल एकदम उछल पड़ा। घबराए हुए कंठ से उसने पूछा—"तुम तो कभी के मर गए,

हो। मृत व्यक्ति को देख डरना स्वाभाविक ही है।"

"मै मर तो जरूर गया हू, लेकिन मेरी आत्मा अपने मकान के इर्द-गिर्द चक्कर लगा रही है। मानव का मन मरकर भी शान्त नही होता। अपने परिवार को लेकर वह सदा अशान्त ही रहता है। सारी दुनिया के सुख का ठेका लेने की बात तो वह नही सोचता। लेकिन इतना जरूर चाहता है, उसका परिवार अवश्य सुखी रहे।"—आगन्तुक ने कहा।

दीनदयाल ने उत्सुकता से पूछा—"तुमने अपनी देह-यात्रा समाप्त की। अब निश्चिन्त रहो। परिवार और ससार से तुम्हारा क्या सबन्ध है? शरीर को लेकर ही मानव दुनियादारी के मामलो और स्वार्थों मे फसा हुआ है।"

"यही तुम गलत समझते हो। व्यक्ति भले ही शरीर को त्याग दे, लेकिन उसकी इच्छाओ का कभी अंत नही होता। इच्छाए और भावनाए कल्पना-प्रधान है। आखिर प्राण भी तो यही है। व्यक्ति के सुख-दु:ख भावना-मात्र है। कोई छोटी-सी बात को अपने लिए बडे दु ख का कारण मानता है तो कोई दु ख के पहाड़ को हसते-हसते अपने सिर पर ढोते हुए आनद का अनुभव करता है। इन दोनो मे साम्य कहा?" —सोमनाथ ने कहा।

"क्यो नही? व्यक्ति अपने ढग से सोचता है और विचारता है। जो भाग्यवाद का पक्षपाती है, वह समस्त सुख-दु.खो को ईश्वर की देन मानता है, लेकिन जो व्यक्ति, व्यक्ति

की शक्ति पर विश्वास करता है और समस्त कार्यों का स्वामी मानव को ही समझता है वह इसके विपरीत सोचता है।"

"मैंने अपने जीवन-भर न्याय का पक्ष लेने और एक उत्तम मानव बनने का शक्ति-भर प्रयत्न किया। लेकिन अन्त मे मुझे क्या हाथ लगा? मेरी आखो के सामने ही मेरी पत्नी का देहात हो गया। मेरी पुत्रिया अनाथ हो गई और मेरे भाग्य मे पुत्र-सुख बदा ही नही था। ईमनादारी और सच्चाई का पक्ष लेने से मै कौन-सा सुखी हो सका?"

"व्यक्ति अपने सिद्धात और आचरण से बडा होता है। उसके अनतर भी उसका व्यक्तित्व अमर बना लोगों का मार्ग-दर्शन करता रहता है। जीवन मे इससे बढकर कौन-सा सुख चाहिए? रही परिवार की बात। प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व का निर्माण खुद करना चाहिए। वह कभी पैतृक सपत्ति नही हो सकती। व्यक्तियो के बीच उनकी मानसिक विचार-धारा, रीति-रिवाज और उनके आदर्श, भिन्नता मे एकता और एकता मे भिन्नता दर्शाते है। कोई भी दो व्यक्ति कदापि एक नही हो सकते। किसी न किसी विषय मे उनमे अतर ज़रूर होता है। व्यक्ति और व्यक्ति के बीच मे अतर दिखाई देनेवाली वह विभाजन-रेखा उसका चरित्र और व्यक्तित्व होती है। उस रेखा की लीक जितनी गहरी और स्पष्ट होती है उतना ही वह व्यक्ति चमकता है।"

"तुम्हारा कथन सत्य है। बच्चो को अपना व्यक्तित्व

बनाने के लिए उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है, इसलिए मै तुमसे यही चाहता हू कि मेरे बच्चो को इस दुनिया मे उचित मार्गदर्शन अवश्य करो ।"

"बच्चो के व्यक्तित्व को कोई बना नही सकता, क्योकि व्यक्ति अपनी साधना एव सकल्प से ही अपने व्यक्तित्व को बना लेता है। दूसरे लोग चाहे वे जितने ही आदर्शपुरुष क्यो न हों अन्यो के व्यक्तित्व के बनाने मे सहायक-मात्र हो सकते हैं। मै अपनी शक्ति-भर अवश्य उन्हे सहायता देने का प्रयत्न करूगा ।"

ये शब्द दीनदयाल कह ही रहे थे कि कमरे मे एक वात्याचक्र के उठने का-सा अनुभव हुआ और दूसरे ही क्षण कोई लबी छाया ऊपर उठती-सी नजर आई। दीनदयाल एकटक उसकी तरफ देखता ही रहा ।

प्रचड वायु के झोको ने कमरे की दीवारों पर लटकने-वाली तस्वीरो का आलोड़न किया। उस प्रहार से एक तस्वीर, जिसका फ्रेम लगा था, जोर से नीचे गिरी। शीशे के फूटने से बड़ी आवाज आई।

चौककर हड़बडाते दीनदयाल जाग उठा। सहमी हुई आखों से कमरे के चारो तरफ अर्थभरी दृष्टि से देखा। उसे कही कुछ नही दिखाई दिया। केवल फर्श पर शीशे के टुकडे चारो तरफ बिखरे हुए थे। उन टुकड़ों को देख दीनदयाल के

मन में न जाने असंख्य प्रकार की भाव-तरंगें कल्लोल करने लगी।

उसे लगा कि यह जीवन भी कैसा विचित्र है। मनुष्य अपने इस शरीर को सुखी बनाने के लिए क्या-क्या प्रयत्न और परिश्रम करता है। लेकिन मानव का शरीर भी एक दिन, जिस तरह फ्रेम मे जडवाए हुए चित्र व शीशे नीचे गिरने से फूट-फूटकर टुकड़ो मे फैल जाते है वैसे ही, मिट्टी मे मिलकर नाम मात्रावशिष्ट रह जाता है।

शीशे के फूटने से पहले उसमे जो चमक-दमक तथा तस्वीर की शोभा को बढाने की जो क्षमता होती है वही मानव-शरीर मे विद्यमान है। मानव अपने शरीर के पोषण के लिए नाना प्रकार के अत्याचार व अन्याय भी करता है। समाज मे प्रतिष्ठा पाने के हेतु वह अनेक षड्यत्र रचता है। इसी शरीर को लेकर व्यक्ति अपने मे राग-द्वेष, स्नेह-सताप, सुख-दुःख, अभिमान-अपमान आदि भावनाओ को प्रश्रय देता है। इनके पोषण के हेतु कभी-कभी व्यक्ति अपने माता-पिता, भाई-बहन, बन्धु-मित्र व समाज-ससार की भी परवाह नही करता है। जहा व्यक्ति के स्वार्थ का प्रश्न आ उपस्थित होता है, वहा पर वह इतना स्वार्थी और संकुचित स्वभाववाला हो जाता है कि उस समय वह यह नही देखता, उसके व्यवहार से अन्य व्यक्तियों पर क्या बीतता है, उनके हृदय क्षोभ से कैसे आदोलित होते है। जहा पर व्यक्ति स्वार्थ के परे होता

है, वहा पर वह इतना ऊपर उठता है कि साधारण मानव की दृष्टि मे वह असाधारण व्यक्तित्व को लिए प्रशसा का पात्र हो जाता है। आखिर यह विषमता क्यो ?

इन बातो पर विचार करते-करते दीनदयाल को अपने भूतकालीन जीवन का स्मरण आया। वह यह सोचने लगा कि जज के पद से अवकाश प्राप्त करने के पहले समाज मे उसका क्या स्थान था और आज क्या है ? समाज-रचना और कानून के निर्माण पर उसे आश्चर्य हुआ। सरकार-रूपी जो यत्र-रचना है, उसका विधान क्यो इतना कठिन और अव्यावहारिक है ? आखिर सरकार क्या चीज होती है, जिसकी लाठी के सामने बडे मेधावी झुकते, उसकी व्यवस्था का पालन करते है। राज्य यत्रांग का न्यायविधान भी कैसा विचित्र है। वह भी उस न्याय-यत्र का एक पुर्जा था। अपराधियो के न्यायान्यायों का फैसला देनेवाला वह विधाता था। न्याय की तुला के सतुलन का उत्तरदायित्व अपने कधों पर लिए समाज मे वह आज तक न्यायाधीश के नाम से पूजा जाता था। उस पद के लिए वास्तव मे वह योग्य है अथवा नही, स्वय वही जान नही पाया। हा, सरकार द्वारा निर्धारित कानूनी शिक्षा का अवश्य उसने अध्ययन किया था। क्या इतने मात्र से ही अपराधियो की जान लेने व जान बख्श देने का उसे अधिकार दिया जाता था ?

जब वह जज था, उसने कई निरपराधियो को फासी की सजा दी थी। कई अपराधियों को निरपराधी घोषित कर

मुक्त किया था। अधिकार के मोह मे वह इन बातों पर ध्यान नही दे सका। लेकिन आज ठंडे दिमाग से सोचने पर उसे ज्ञात हुआ कि उसने जो कुछ किया था वह उसका कर्तव्य नही बल्कि अधिकार का दुरुपयोग था।

एक बार की घटना है। दीनदयाल के भाई ने अपने कारखाने के किसी कर्मचारी को गुस्से मे आकर मार डाला था। कानून की दृष्टि से उसका भाई हत्यारा था। लेकिन उसने कानून की आड से अपने भाई को बचाया था। उस कर्मचारी के पिता ने न्यायाधीश के घर पहुचकर न्याय की भीख मागी थी। लेकिन दीनदयाल टस से मस न हुआ था। उल्टे दुत्कारकर नौकरो से गर्दन पर हाथ डलवाकर बाहर निकलवाया था। उस कर्मचारी के पिता ने अपने लड़के की मौत का हरजाना दिलवाने की मिन्नत की थी। लेकिन सहानुभूतिपूर्वक सुनने की सहनशीलता उस वक्त उसमे नही थी। ऊचे समाजों में जाना, प्रतिष्ठित व्यक्तियो के साथ सबध रखना उसकी दृष्टि मे बड़प्पन का निशान था। लेकिन उस वक्त वह यह नही जान पाया कि व्यक्ति का बड़प्पन उसके धन मे है, पद में है, प्रतिष्ठा मे है अथवा चरित्र मे ?

इन सबका कारण शायद यह हो सकता है कि वह अपने को कानून का संरक्षक मानता था, जिस कानून के सबध मे मानव स्वय गफलत मे पडा हुआ है। न्याय का पक्ष ले कानून के अनुसार जज अपराधी को दंड देता है।

लेकिन वही अपराधी घूस देकर उस दड से मुक्त होता है और बेचारा निरपराधी जो कि अवैधानिक रूप से घूस देने का विरोधी है, दड का भागी बन जाता है। इस प्रकार कानून को बदला जाता है, न्याय की परिभाषा भी बदलती है, अपराधी और निरपराधी भी बदलते है।

इन सब बातो पर आज ठडे दिमाग से और विवेकपूर्वक सोचने पर दीनदयाल को मालूम हुआ कि न्याय के इतिहास मे उसका क्या स्थान था। उसे इस बात का आश्चर्य हुआ कि पद पर रहते समय लोग उसके घर के चारो तरफ चक्कर काटते थे और उसकी कृपा का पात्र बनकर सैकडो व हजारो रुपयो की थैलिया भेट चढाने मे अपने लिए गौरव की बात समझते थे। वे लोग आज उसके घर की तरफ फटकते नही और हठात् कही बाजार मे दिखाई देने पर भी सलामी देने से बचने की कोशिश करते हुए खिसक जाते है। क्या मानव अधिकार के अभाव मे इतना पगु बन जाता है ?

इसी प्रकार प्रत्येक पद मे व्यक्तित्व के कितने रूप होते है। अधिकार के मद मे व्यक्ति जीवन के रंगीन स्वप्न देखता है, उसका दिमाग भी बैरोमीटर की तरह सदा ऊपर चढा रहता है। लेकिन उससे अलग होने पर सबकी सहानुभूति का स्वाग रचता है।

ठीक इसी प्रकार परिवार मे पिता अथवा संरक्षक का स्थान होता है। परिवार का हर व्यक्ति अपने कर्तव्य के पालन

मे सदा जागरूक नही होता बल्कि अपनी दुर्बलताओ और विशिष्टताओ से वह किस प्रकार समाज मे अपना पार्ट अदा करता है, यह एक विशिष्टता की बात है। यही मानव की मानसिक विचार-धारा का वैशिष्ट्य है।

यह सोचते-सोचते न जाने वह कब गहरी निद्रा मे निमग्न हुआ।

११

मद्रास मेडिकल कालेज के वुमेन्स होस्टल की दूसरी मजिल से सरला अपनी सहेलियो के साथ उतरकर ज्योही मेनहाल मे पहुची, त्योही डाकिये ने सरला को मनिआर्डर दिया। फार्म पर हस्ताक्षर करके सरला ने गिनकर रुपए लिए। उसे आज का पूर्वनिश्चित कार्यक्रम याद आया। तुरन्त वह टेलिफोन के पास दौडकर पहुची। टेलिफोन का चोगा हाथ मे ले डायल किया। उधर से आवाज आई। सरला ने बोलना शुरू किया—"हलो, सुरेश, तुम्हे याद होगा आज 'प्लाजा' मे मैटिनी शो 'देवदास' देखने जाना है। अभी दो बजने जा रहा है। टैक्सी लेकर जल्दी आओ।"

टेलिफोन रखकर सरला सुरेश की प्रतीक्षा मे मेनफाटक के पास खड़ी रही। थोड़ी देर मे सुरेश टैक्सी ले आया।

सरला टैक्सी मे जा बैठी । टैक्सी तेजी से चलने लगी । धीरे-धीरे जनरल अस्पताल, सेंट्रल स्टेशन, स्टेट ट्रासपोर्ट, ऐलण्ड ग्राउण्ड्स, राजाजी हाल, हिन्दू आफीस, रौण्डटाना, जनरल पोस्ट आफीस और कास्मोपोलिटन क्लब होते हुए टैक्सी प्लाजा थियेटर के सामने जा रुकी । सरला और सुरेश सीधे बालकनी मे जा बैठे । न्यूजरील के साथ फिल्म शुरू हुई । दोनो उसे देखने मे तल्लीन हुए ।

बीज अकुरित हो पौधे का रूप धारण करता है । क्रमश पौधे पत्तो से पूर्ण हो बढने लगते है । एक ही बीज में वृक्ष का विराट रूप भी विद्यमान है, और लता का व्यापक जाल भी । ज्यो-ज्यो ये दोनो बढते जाते है, त्यो-त्यो एक-दूसरे की ओर आकर्षित होते है । लता मे कोमलता है, सुकुमारता है, सौन्दर्य है और आत्मसमर्पण की भावना है । वह पराश्रय मे ही बढती है । आश्रय के अभाव मे वह मुरझा जाती है । धीरे-धीरे विनष्ट होती है, इसलिए उसके लिए वृक्ष का सहारा आवश्यक हो जाता है ।

वृक्ष मजबूत हो, अपनी जड़ें मिट्टी में गहरी जमाकर ऊपर की ओर बढने लगता है । उसे आश्रय की आवश्यकता भले ही न हो किन्तु उस कठोरता के लिए कोमलता और स्नेहपूर्ण शीतलता की आवश्यकता का अनुभव जरूर होता है । दोनो स्वभाव से विभिन्न तत्त्व और गुणों से युक्त होने पर भी

तादात्म्य के अनुभव के लिए छटपटाते है। दोनो मे परस्पर आकर्षण क्यो है ? यह कोई नही बता सकता। प्रकृति की उस विलक्षणता के सामने ये दोनो परस्पर विरोधी तत्त्व नतमस्तक है। इन तत्त्वो के बीच सघर्ष होता है। दोनो अलग हुए तो फिर मिल जाना असभव नही, तो कठिन जरूर है। किन्तु परस्पर स्नेह-बन्धन मे ये दोनो तत्त्व अपनत्व को भूल एकरूपता का अनुभव करते है। कौन-सी ऐसी महती शक्ति है जो इन दोनो तत्त्वो को एक सूत्र मे पिरोने की क्षमता रखती है, उसे कोई आकर्षण की सज्ञा देते है तो कोई प्रेम या स्नेह।

भावात्मक सबध दो समान अवस्था के और समान तत्त्वो के बीच ही तो है। लता को उचित अवसर पर वृक्ष का सहारा प्राप्त नही हुआ तो वह ऊपर निश्चिन्त फैल नही सकती। फल-फूलरूपी अपनी मधुरता और अपने सौन्दर्य का बोध नही करा सकती। ऐसी हालत मे उसका उपयोग न और के लिए हो सकता है और न वह अपने अस्तित्व का गर्व ही कर सकती है। यही आकर्षण सृष्टि के भीतर दो परस्पर विरोधी किन्तु स्वजातीय तत्त्वो में पाया जाता है।

मानव के भीतर जो आकर्षण है वह पात्र के अनुरूप वात्सल्य, स्नेह और प्रेम के नाम से व्यवहृत है। किन्तु यौवन-काल में युवती और युवक के मध्य जो आकर्षण होता है वह प्रेम या प्रणय नाम से जान व मान लिया जाता है।

सरला और सुरेश के बीच यही आकर्षण क्रमशः बढ़ता

रहा ! दो व्यक्तियो के बीच आकर्षण तभी होता है जब उनका सान्निध्य होता है । प्रारभिक परिचय क्रमश· स्नेह मे, तत्पश्चात् प्रेम मे परिणत होता है । प्रेम तो कई प्रकार का होता है । एक तो विशुद्ध प्रेम होता है जिसमे वासना और स्वार्थ के लिए स्थान नही होता । दूसरा स्वार्थ या वासनापूर्ण होता है । इसलिए यह कहना मुश्किल है कि सरला और सुरेश के बीच जो आकर्षण बढता जा रहा है वह कौन-सा प्रेम है ? किन्तु इतना निश्चित है कि वे दोनो सदा एक-दूसरे के निकट रहने को लालायित होते है । बार-बार मिलने के अवकाश की तलाश करते है । मित्रमडली मे रहते समय भी वे दोनो वहा से खिसकने की सोचते है । हमेशा दोनो एकान्त मे रह सकनेवाली योजना बनाते है ।

इन दोनो के आकर्षण का उद्देश्य क्या है ? वे ही स्वय नही जानते, यौवन के उफान का अल्हडपन है अथवा स्नेह का परस्पर बधन ?

सिनेमा के समाप्त होने की घटी वजी । सिनेमाघर के सब दरवाजे खुल गए । तीन घटे तक बोलपट मे निमग्न प्रेक्षक एक-एक करके बाहर आने लगे । बालकनी से एक जोड़ी प्रसन्नतापूर्वक वार्तालाप करते सीढियो से उतरने लगी । पैदल चलते यह जोड़ी पास मे ही स्थित 'मई काफी बार' मे पहुची । और 'रुफ गार्डन पर' एक कोने की मेज पर जा बैठी ।

सध्या की समुद्री ठडी हवा मद्रास की तप्त गरमी का शीतल बनाने लगी। 'रुफ गार्डन' की लताम्रो तथा गमलो के पौधों के फूलो से सुगन्धि चारो चरफ फैलने लगी। रेडियो-ग्राम का सुन्दर सगीत से वह वातावरण ग्रत्यन्त मधुर मालूम होने लगा। सभी लोग ग्रपने वाछित पदार्थो का ग्रार्डर देकर उनका स्वाद लेने मे मग्न थे। साय-साथ वार्तालाप भी चलता रहा। बॉय ने ग्राकर उस जोडी को मीनू देते हुए पूछा—

"ग्रापको क्या लाऊ सर ?"

सुरेश ने मीनू देखते हुए दो कटलेट लाने का ग्रादेश दिया। बॉय चला गया।

सरला, जो ग्रबतक मौन थी, बोल उठी—

"सुरेश, फिल्म के सबध मे तुम्हारी क्या धारणा है ?"

सुरेश ने हसते हुए कहा—"देखो, मै ग्रपने दिल की बात बतला रहा हूं। क्या नारी 'पार्वती' जैसा त्याग कर सकती है ?"

"यदि देवदास जैसा पुरुष हो तो ग्रवश्य कर सकती है। तुम यह भूल जाते हो कि नारी केवल एक ही बार प्रेम करती है। वह पुरुष को कुछ देना जानती है, बदले मे कुछ प्राप्त करने की कभी कामना नही रखती है। पुरुष की बात ऐसी नही, वह लेना जानता है, देना नही।"

"क्यों नही, देवदास ने जो महान त्याग किया था वह हम पार्वती मे नही पाते है। पार्वती की शादी हो चुकी थी। चाहे तो देवदास किसी दुसरी लड़की से विवाह करके ग्रपना

जीवन सुखमय बना सकता था। लेकिन उसने पार्वती को अपना हृदय दे दिया था। उसके हृदय मे दूसरी नारी के लिए बिलकुल स्थान ही नही था। यही कारण है कि वह पार्वती को न पा सकने की हालत मे उसे भूलने के लिए मधु का सहारा लेता है। और इस प्रकार उसे भूल जाने की कोशिश करता है। अत में इसी प्रेम-यज्ञ की एक समिधा बनकर अपनी इहलीला समाप्त कर लेता है।"

"तुम पार्वती के त्याग को भूल रहे हो। हमारे समाज मे नारी विवश है। इसलिए वह जिसे प्रेम करती है उसे पा नही पाती। कारण हमारे समाज के भीतर जाति, धर्म, कुल और भाषा-भेद की जो सकुचित दीवारे है, वे जब तक ढह नही जाएगी तबतक नारी इसकी शिकार होती ही रहेगी। आज तो उपर्युक्त भेदो के अलावा अमीर-गरीब, ऊच-नीच, शिक्षित-अशिक्षित इत्यादि असख्य भेद पाए जाते है। पार्वती भी इन्ही भेद-भावो की शिकार हुई। फिर भी वह समाज की मान्यता की रक्षा के लिए अतिम समय तक प्रयत्न करती रही।

"वृद्ध के घर मे रहते हुए भी देवदास को भूल नही सकी। पुरुष अपने प्रेम का परिचय दे तो भी हमारा समाज उतना बुरा नही मानता। यह जानते हुए भी कोई उसे अपनी लड़की देने के लिए आगे बढ़ेगा। लेकिन नारी की बात इससे बिलकुल विपरीत है। उसपर एक बार कलंक का धब्बा लगा तो

समझ लो कि उसकी जिन्दगी तबाह हो गई। फिर उससे विवाह करने के लिए कोई भी युवक आगे नही बढ़ेगा।"

"ऐसे पुरुष भी है जो एक बार किसीको हृदय देते है तो उसे अत तक निभाते भी है।"

"मै यह नही कहती कि ऐसा कोई पुरुष नही है। मै यही कहती हू कि पुरुष धोखा भी दे अथवा धोखा खा जाए तो भी समाज उसका बहिष्कार नही करता। ऐसा वैषम्य क्यो है? हमारे हिन्दूसमाज मे ही यह भिन्नता अधिक देखी जाती है। विदेशो मे नारी स्वतन्त्र है। वह अपने वाछनीय वर का चुनाव कर सकती है।"

"यह सब समाज-रचना पर निर्भर है। सामाजिक व्यवस्थाएं भी मानव-निर्मित है। पुरुष ही ने वहा पर भी नारी को अधिक स्वतन्त्रता प्रदान की है। आर्थिक दृष्टि से भी उसे स्वावलबिनी बनाने का अवकाश उसे प्रदान किया है। जब पुरुष यह चाहता है कि उसकी बहन अथवा बेटी या उसकी प्रेमिका को वह स्वतत्रता प्राप्त हो जिसका वह उपभोग कर रहा है, तभी वह ऐसी व्यवस्था पर जोर देता है। पाश्चात्य देशों मे भी यही अनुभव कर पुरुष ने ऐसी व्यवस्था कायम की है। भारत में भी क्रमशः ऐसी व्यवस्था का निर्माण हो सकता है, चाहे कुछ समय क्यो न लग जाए।"

"मै विश्वास नही कर सकती, भारत मे ऐसी समाज-रचना कायम होगी। कई शताब्दियो के विकास का परिणाम

है वहा की नारी की स्वतन्त्रता। नारी ने पुरुष को प्रभावित कर—अपनी योग्यता और व्यवहारों से—तथा पुरुष से संघर्ष कर ही अपना अधिकार आप प्राप्त कर लिया है। वरना स्वार्थी पुरुष नारी को कब स्वतन्त्रता देने को तैयार होता?"

"तुम्हारा सोचना गलत है। सघर्ष का परिणाम सदा अपकार ही होता है। समझौते मे ही उपकार सभव है। पुरुष सर्वाधिकारी है। अगर वह नही चाहता तो नारी कदापि स्वतन्त्र न हुई होती।"

बहस चल रही थी। 'कटलेट' के साथ आइसक्रीम भी समाप्त हुई। होटल की घड़ी ने सात बजा दिए। सरला और सुरेश का ध्यान भग हुआ।

होटल का बिल चुकाकर दोनो नीचे आए। माऊट रोड पर होटल के सामने टैक्सी रुकी थी, दोनों जा बैठे। बडी तेजी के साथ टैक्सी मेडिकल कालेज होस्टल की ओर वायु-वेग से दौड़ पड़ी।

१२

मेडिकल कालेज के होस्टल के सामने कोलाहल हो रहा है। विद्यार्थी सब छुट्टियो मे घर जाने की तैयारी कर रहे हैं। कुछ लोग अपने मित्रो से विदाई लेने के लिए इधर-उधर

दौड-धूप कर रहे है, तो कुछ विद्यार्थी बाजार मे आवश्यक वस्तुए खरीदने के लिए टैक्सियो मे जा रहे है।

विद्यार्थी-जीवन मे विद्याध्ययन का काल प्रचण्ड ग्रीष्म ऋतु है तो छुट्टियो का समय वसत ऋतु के समान है। पढाई को भूलकर छुट्टियो मे ही विद्यार्थी अपना समय खाने-पीने और विनोद मे बडे आनद के साथ बिता सकते है। अलावा इसके अपने परिवार के लोगो से दूर रहने के कारण उनसे मिलने की उत्कट इच्छा भी उनके दिलो मे हिलोरे मारने लगती है। घर पर वे अपने आत्मीयो के सामने अपने सुख-दु ख-सम्बन्धी हृदय की गाठे खोलकर परम सुख का अनुभव करते है। चाहे घर पर नगर का वातावरण, वहा की सुख-सुविधाए, वैसा स्वादिष्ट भोजन भले ही प्राप्त न हो फिर भी विद्यार्थी छुट्टियो मे अपने घर जाने को लालायित होते है। न मालूम परिवार और व्यक्ति के बीच कौन-सा ऐसा कोमल स्नेह-सूत्र इनको बाधे हुए है, कुछ बता सकना कठिन-सा लगता है।

समाज की रचना मे परिवार एक इकाई है। व्यक्ति का वैसे तो परिवार में महत्त्व है भी और नही भी। वह केवल परिवार का एक अग है। व्यक्तियो का सम्मिलित रूप ही समाज है। व्यक्ति और परिवार के बीच का चुबक पारिवारिक व्यवस्था अथवा रचना को प्राण प्रदान कर रहा है। वह गुरुत्वाकर्षण न होता तो आज मानव कदापि 'वसुधैवकुटुम्वकम्' का

सपना न देखता ।

व्यक्ति आखिर परिवार रूपी छोटी-सी इकाई से क्यों बधा हुआ है ? उसका पुर्जा क्यों बना हुआ है ? व्यक्ति का हृदय उतना विशाल है कि उसमे सारी मानवता के सुख-दु.ख प्रतिबिबित होते है । फिर भी वह परिवार रूपी एक सकुचित एव सूक्ष्म अश से क्यो बधा हुआ है ? विश्व की व्यवस्था में सम्भवत· परिवार बुनियादी हो । इतना निश्चित है कि जिस प्रकार ब्रह्माड के समस्त ग्रह परस्पर आकर्षण के कारण अपने स्थान पर स्थित हो समस्त विश्व का अपने पथ मे परि-भ्रमण करते है वैरो ही व्यक्ति अपने परिवार से आकर्षित हो समस्त प्रदेशो मे अपने कर्तव्य के पालन में लगा रहता है । अन्तर इतना ही है, व्यक्ति इसी आकर्पण को लेकर कभी-कभी परिवार मे आ जुडता है । वैसे तो अलग रहने पर भी उसका नाता भावात्मक रूप मे सदा लगा रहता है । कभी-कभी ऐसा भी होता है, व्यक्ति परिवार से अपना नाता तोडकर उसे विच्छिन्न करने का प्रयत्न करता है । व्यक्ति की मानसिक स्थिति और उसके आचरण पर परिवार का आकर्षण बहुत कुछ निर्भर होता है। किसी एकाध परिवार के विच्छिन्न होने पर भी सामाजिक व्यवस्था मे कोई अन्तर नही आता । फिर भी आकर्षण व्यक्ति और परिवार को सतुलित किए रहता है ।

विद्यार्थी सब अपनी इकाई से मिलने को आतुर हैं । सरला

ने भी आवश्यक चीजे खरीदी । सामान पैक करके सुरेश की प्रतीक्षा करने लगी । उसने पहले ही तार द्वारा अपने आने की सूचना सुहासिनी को दे दी थी । सुरेश ने सरला को गाड़ी पर चढाकर विदाई ली । गाड़ी की रफ्तार जब तक तेज न हुई, तब तक वह प्लेटफार्म पर खड़े रूमाल को हिलाते सकेत करता रहा । सेंट्रल स्टेशन सरला की नजरों से ओझल हुआ । सरला ने एक गहरी सास ली । अब उसे अपने परिवार के लोगो से मिलने की एक विचित्र अनुभूति होने लगी । उसका मन अपने एक साल का अनुभव बहिन के समक्ष व्यक्त करने को विकल होने लगा । अब वह जी भर के अपनी बहन से बात करेगी । इसी विचार मे वह खो गई ।

प्रात.काल छ. बजे कलकत्ता मेल विजयवाडा के प्लेटफार्म पर आ लगी । सुहासिनी और राजाराम पहले ही से सरला को ले जाने स्टेशन पर प्रतीक्षा कर रहे थे । सरला डिब्बे मे दरवाजे के पास खडी रही । उसकी आखे प्लेटफार्म पर की भीड मे अपनी बहन को ढूढने लगी । सुहासिनी ने अपनी बहन को देखा तो वह उस डिब्बे की ओर दौड़ पड़ी । उसे उस समय इस बात का ख्याल न था कि प्लेटफार्म पर दौड़ना एक नारी के लिए शोभा नही देता । दोनो बहनो ने गले लगकर अपना प्यार व्यक्त किया । दोनो दृढ आलिंगन मे ही मग्न रही । पीछे कोई आहट हुई, सरला ने मुड़कर देखा कि राजा-राम प्रसन्न मुख-मुद्रा मे उन दोनो बहनों की ओर निर्निमेष

देख रहा है । उनके नेत्रो में स्नेह का अपूर्व तेज था । सुहासिनी ने सरला को राजाराम का परिचय कराया ।

सुहासिनी ने कल्पना की थी कि होस्टल का भोजन करने से सरला दुर्बल हुई होगी । लेकिन सरला को खूब मोटी-तगडी देख वह विस्मित हुई । सरला का रग पहले की अपेक्षा अधिक गोरा, उसकी देह कही ज्यादा चिकनी और उसके कपोल सेव जैसे गोल, सुडौल एवं लाल थे ।

सरला को ले सुहासिनी और राजाराम घर पहुंचे । फाटक पर सीतालक्ष्मी ने सरला की नजर उतारी । उसे बड़े प्यार के साथ भीतर ले गई ।

सरला के आगमन से 'शान्ति निलय' मे जान आ गई । पहले की अपेक्षा उसकी रौनक कही ज्यादा बढ गई । बडी देर तक वे सब अपने परिवार-सबन्धी वार्तालाप करते रहे । उसमें मुख्यत: राजाराम और सीतालक्ष्मी की कहानी अधिक रही । प्रसगवश एक-दो बार सोमनाथ की बात भी आयी तो सुहासिनी विचलित-सी हुई, लेकिन यह सोचकर उसने सभाल लिया कि सरला पर उसका बुरा प्रभाव पड़ेगा । परिस्थिति को गभीर होते देख सीतालक्ष्मी ने उस प्रसग को बदलते हुए कहा—"सरला ! तुम दोनो को रामापुर ले जाना चाहती हू । एक-दो दिन यहां बिताकर चले जाएगे···"

"एकाध महीना यही रहो फूफी, फिर हम सब जा सकते है ।"

"नही बेटी ! मुझे आए एक महीने से ज़्यादा हो रहा है। मुझे जब मालूम हुआ कि तुम आनेवाली हो, तभी मैं तुम्हें देखने और ले जाने की इच्छा से ठहर गई। आज और कल आराम करो। परसो जायेंगे।"

"अच्छी बात है फूफी। नही तो तुम कहा माननेवाली हो ?"—सरला हंस पड़ी। उसकी हंसी में और लोगों ने भी साथ दिया।

सीतालक्ष्मी और राजाराम सुहासिनी और सरला के साथ रामापुर पहुचे। सीतालक्ष्मी ने उनके आतिथ्य की काफी अच्छी तैयारिया की। वह सोचने लगी कि ये दोनों बच्चिया बड़े सुख मे पली है। अपने घर पर उन्हे किसी चीज का अभाव न रहे। उन्हें रामापुर लाने में सीतालक्ष्मी का यह भी उद्देश्य था कि वे अपने पिता को भूल जाएंगी।

सरला को देहाती वातावरण अखरने लगा। होश सभालने के बाद वह देहात कभी नहीं गई थी। उन लोगो को देखने के लिए गाव-भर के लोगो का इकट्ठा होना, उनकी पतली साड़ी व रगीन चूड़ियों की आलोचना करना, बेसर के न पहनने पर फिल्म-स्टार कहकर हसी उड़ाना, बाएं हाथ में चूड़ियों के स्थान पर कलाई-घड़ी देख दातों पर उगली दबाना आदि सरला को असभ्य और असह्य प्रतीत हुआ।

राजाराम को देहातियो का व्यवहार बहुत बुरा मालूम

होने लगा। उसका दिल इस आशंका से बहुत परेशान था कि कही सरला उन देहातियो की करतूतों से रुष्ट न हो जाए। कई बार उसने उन्हे समझाने की कोशिश भी की, लेकिन वे अपनी आदतो से विवश थे। परंपरागत सस्कारों के विरुद्ध शहरी वातावरण और नागरिक जीवन उनकी आलोचना का विषय अवश्य बना। वे रुढिवाद के पुजारी हैं। नई विचार-धारा का स्वागत करने और उसके अनुकूल अपने को बनाने की चेष्टा वे नही करना चाहते।

राजाराम की परेशानी को सरला भाप सकी। देहातियों के व्यवहार पर उसे क्षोभ जरूर हुआ। वह उन्हे डाटती भी, परन्तु यह सोचकर वह चुप रही कि इससे राजाराम को और भी अधिक मानसिक क्लेश पहुचेगा। सुहासिनी तो अपनी फूफी को मदद देने में लगी रही।

रामापुर मे राजाराम ने सरला और सुहासिनी के आतिथ्य में जो तत्परता दिखाई, उन्हे प्रसन्न करने के लिए जो परिश्रम किया और उनके साथ जैसा शिष्टतापूर्वक व्यवहार किया, इन सबसे राजाराम को समझने मे दोनों बहनो को अच्छा मौका मिला।

सुहासिनी बड़ी समझदार है। इसीलिए वह परिस्थिति के अनुकूल चलती है। लेकिन सरला उस देहाती वातावरण मे खप न सकी।

भोजन का समय हुआ देख सीतालक्ष्मी ने सरला से स्नान

करने के लिए कहा। सरला पिछवाडे मे गई। देखा वहा कोई स्नानागार नही है। उसने आश्चर्य से पूछा—"फूफी, स्नानागार कहा है ?"

"बेटी, देहात में शहर की भाति अलग स्नानागार नही होते। चारपाई वहा खडी कर दी गई है। उसपर साडी डाल दो। वही बाल्टी मे गरम पानी रखा हुआ है। चारपाई की आड मे नहाओ।"

पहले सरला सकुचाई। उसे खीज हुई। लेकिन कोई दूसरा चारा न देख जैसे-तैसे नहा ली। खाने का बुलावा आया, तो देखती है कि वहां पर न मेज है और न कुर्सी; छुरी-काटे की बात तो दूर रही। पुरानी चटाई पड़ी हुई थी, जिसपर आध इच मोटी धूल जमी हुई थी। उसे घृणा हुई। नाक-भौ सिकोड़ते हुए चार कौर निगल लिया मानो कोई कडवी दवा हो। आराम करने की इच्छा हुई तो अपनी फूफी से पूछा—"फूफी, सोने का कमरा कहा है ?"

"बेटी, देहात में हाल ही सोने का कमरा होता है।"

"तो सबके सामने कैसे सोया जाता है ?"

"हम सब भोजन करके बरामदे मे जाएगी, तुम आराम करना।"

सरला ने सोचा कि यह वन-वे ट्राफिक भी क्या भला है ? वहा बिजली की बत्ती नही थी, न पखा ही था, न रेडियो था और न पार्क।

बड़ी मुश्किल से सरला ने रामापुर मे कुछ दिन बिताए। जब विजयवाड़ा लौटने की खबर उसके कानो में पडी तो उसने ऐसा अनुभव किया मानो वह नरक-कूप से मुक्त होकर स्वर्ग में जा रही हो।

१३

सरला की छुट्टिया रामापुर और विजयवाड़ा मे बड़े मजे मे बीत गई। अपने आत्मीयों से मिलने और आराम करने का उसे यह अच्छा मौका मिला था। फिर मद्रास जाने मे पहले उसे कुछ कठिन-सा मालूम हुआ। लेकिन सुरेश के स्मरण-मात्र से उसके मन मे एक प्रकार की बेचैनी पैदा हुई। निर्णीत समय पर मद्रास पहुंची।

विजयवाडा मे 'शान्तिनिलय' मे सरला के आगमन से रौनक आ गई थी। सदा हंसी-खुशी और आनंद छाया रहता था। अपने आदमियो के निकट रहने से मानव स्वभावत. जिस प्रकार के आनन्द का अनुभव करता है वह अवर्णनीय होता है। इस अव्यक्त प्रसन्नता मे कितने दिन और कैसे जल्दी बीत गए, कुछ कहना कठिन है। सरला के मद्रास जाने से सुहासिनी एकान्तता का अनुभव करने लगी। वह हमेशा खोई हुई तथा चिन्तित दिखाई देने लगी। शकर नायर यह

भाप पाया। इसलिए वह सुहासिनी को प्रसन्न रखने के लिए अच्छे-अच्छे पकवान बनाकर खिलाता और मीठी कहानियां सुनाता। वह खुद मा बनकर सुहासिनी को अत्यन्त वात्सल्य भाव से देखता। यद्यपि वह पुरुष था, लेकिन उसमे मातृत्व की भावना कूट-कूटकर भरी थी। इसीलिए वह उस परिवार के भीतर इस तरह मिल गया था कि देखनेवाले भी उसे पराया न मानते। बल्कि उन बच्चो का दादा या नाना समझते।

एक दिन दुपहर के समय सुहासिनी बहुत चिन्तित दिखाई दी। शायद उसे अपनी बहन की याद आई थी। नायर ने बड़े प्रेम से सुहासिनी को भोजन के लिए बुलाया और मेज़ पर सारी चीजे परोसने लगा। सुहासिनी मौन बैठी थी। भोजन करने की उसकी इच्छा नही थी। लेकिन वह यह सोचकर अनिच्छा से भोजन करने लगी कि वह नहीं खाएगी तो नायर दुखी होगा और वह भी नहीं खाएगा।

नायर ने सकुचाते हुए कहा—"बेटी, मै कब से इस घर मे रहता हू, जानती हो ?"

"मै कुछ ठीक बता नहीं सकती।"

"तुम्हारे दादा के जमाने से मै इस घर मे रह रहा हू। जब तुम्हारे पिता दस साल के थे तभी मैं आया था। यह भी तुम जानती हो ?"

"हा दादा, जानती हू।"

"कैसे ?"

"जब-तब मेरी माता और मेरे पिता कहा करते थे कि तुमने हमारे परिवार की बहुत मदद और सेवा की है।"

"बेटी, मेरी उम्र क्या है, जानती हो ?"

"नही तो।"

"अब मैं करीब साठ साल का हो गया हू। पहले की तरह मैं काम भी नही कर पाता हू। तुम बुरा न मानोगी तो तुमसे एक बात कहना चाहता हू।"—गद्गद कठ से नायर ने कहा।

सुहासिनी ने नायर की ओर देखा, उसकी आखो मे आसू छलक रहे थे। उसने विकल होकर पूछा—"क्यो दादा ? क्या हुआ ? तुम रोते क्यो हो ?"

"कुछ नही बेटी, कुछ नही···" आसू पोछते हुए नायर ने कहा।

"नही दादा, मुझसे छिपाते हो। मैने आज तक तुम्हे रोते नही देखा। कोई कारण होगा।"

"नायर के ओठ फड़क रहे थे। उसके गले मे कपन था। वह कुछ कहना चाहता था, लेकिन बोल नही फूटते थे। उसके हृदय मे कोई बड़ा तूफान मचा हुआ था किन्तु वह उसे व्यक्त नही कर पाता था। उसके हृदय के भीतर होनेवाले मानसिक संघर्ष को सुहासिनी जान नहीं पाई।

सुहासिनी का चित्त विकल हुआ। उसने रोनी सूरत बनाकर उद्विग्नता से पूछा—"दादा, बताओ, मेरे सामने

क्यों छिपाते हो ? न कहोगे तो मेरी कसम।"

नायर विचलित हो उठा। उसका सारा शरीर काप गया। गहरी सास लेते हुए नायर ने वेदना-भरे कठ से कहा—"बेटी, अब मेरी उम्र ढल गई है। मेरी ताकत भी जवाब दे चुकी है। आखो से भी साफ दिखाई नही देता है।"

"तो ?"

"मै चाहता हू, आराम करू।"

"तुम आराम जरूर कर सकते हो दादा। मै दूसरा रसोइया रखूगी। तुम केवल बगीचे का काम देख लो।"

"नही बेटी, आगे मेरे रहने से तुमको तकलीफ होगी।"

"मुझे कोई तकलीफ नही होगी, दादा। तुम्हारे न रहने से मै पागल हो जाऊगी। कोई बड़ा व्यक्ति न रहे तो कैसे यह सब सभाल पाऊगी ?"

"तुम तो बड़ी अक्लमंद हो। सब सभाल सकती हो। मुझे तो अब अपने घर जाना है।"

"आखिर तुम्हारे वहा है कौन ?"

"क्यो नही ? मेरे भाई है, बहने हैं, उनके पुत्र है। बुढापे मे कुछ समय उन लोगो के बीच बिताकर मैं वही अपना शरीर छोड़ना चाहता हू।"

यह सुनते ही सुहासिनी खिन्न हुई। वह सिसकती रही। नायर ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—"बेटी, रोती क्यों हो ? तुम्हारे रोने से मुझे भी दु:ख होगा। क्या तुम अपने दादा को

रुलाना चाहती हो ?"

"नही दादा, तुम हमे छोडकर जा रहे हो। हम कैसे रह सकती है ?"

"तुम समझदार हो बेटी, तुम्हे ज्यादा बताने की जरूरत नही। अब मेरे यहा रहने से तुमको कई तकलीफे होगी। यह सब सोचकर ही मैने जाने का निर्णय किया है। बुढापे में मै तुम्हारे लिए बोझ नही बनना चाहता हू। वरना जाने की मेरी भी इच्छा नही थी। मै जहा भी रहूगा तुम लोगो की शुभकामना ही करता रहूगा।"

"तो मै इस घर मे अकेली कैसे रह सकती हूं ?"

"तुमको अकेली रहने की कोई जरूरत नही। अकेले रहना भी नही चाहिए। मै सीतालक्ष्मी के पावो पर पडकर उन्हे और राजाराम को यहा ले आऊगा। कोई पराए नही। अलावा इसके, पारिवारिक मामलों मे सीतालक्ष्मी बहुत कुशल है। उसके रहने से तुम्हे किसी प्रकार की असुविधा नही होगी।"

बडी मुश्किल से समझा-बुझाकर आखिर नायर ने सुहासिनी को मनाया। सुहासिनी को अपने बचपन के दिन याद आए। वह नायर की ममता-भरे जलनिधि मे गोते लगाने लगी। नायर की विश्वासपात्रता और उसकी हालत जानकर सुहासिनी ने कुछ प्रतिरोध नही किया।

एक दिन नायर रामापुर गया। सीतालक्ष्मी और राजाराम को वास्तविक स्थिति का परिचय कराकर उन्हें विजय-

वाडा मे रहने के लिए राजी किया। वे तीनो विजयवाडा पहुचे।

नायर ने अपने भाइयो के पास मद्रास जाने की सारी तैयारिया की। उसने अब तक अपना खर्च निकालकर जो कुछ बचाया था उन तीन हजार रुपयो को सुहासिनी से लिया। सबसे विदा लेकर घर से निकल पड़ा। सीतालक्ष्मी की आखों मे आसू आगए। सुहासिनी तो तब तक रोती रही जब तक नायर फाटक से बाहर नही गया। वह निर्निमेष नेत्रो से देखती रही। नायर धीरे-धीरे उसकी आखो से ओझल हो गया।

१४

जनरल अस्पताल आने-जानेवाले रोगियों से खचाखच भरा हुआ था। आउट पेशेण्ट वार्ड मे रोगियों की कतार लगी थी। एक-एक करके रोगी काउटर के पास जाता, अपनी बीमारी का हाल बताकर चिट लेता और उस चिट पर अकित वार्ड मे चला जाता।

एक बूढा काउटर के पास चिट ले दसवे वार्ड मे पहुचा। वहा पर रोगी पंक्तिबद्ध हो बेच पर बैठे हुए थे। एक-एक को डाक्टर बुलाता, जांच करके एक नुस्खा देता। नुस्खा लेकर

रोगी दवा लेने चला जाता । जाच करनेवाले डाक्टरो के पास मेडिकल कालेज मे प्रशिक्षण पानेवाले विद्यार्थी और विद्यार्थि-निया बीमारियो का निरीक्षण कर रहे थे । और कभी-कभी अपने सदेहों का निवारण भी कर लिया करते थे ।

एक विद्यार्थी को देख बेच पर बैठे हुए बूढे की बाछे खिल गई । उसकी आखे अपूर्व स्नेह से दमक उठी । बहुत दिनो के बाद उसने उस लडकी को देखा था । एक छलाग मे उसके पास पहुचकर वह कुछ कहना चाहता था । लेकिन यह सोच-कर कि अन्य डाक्टरो के सामने उससे बात करना अच्छा न होगा, वह चुपचाप उसकी तरफ देखता ही रहा । वह मन मे सोचने लगा कि यदि वह उसे देख लेगी तो जरूर कुशल-प्रश्न करेगी । थोड़ी देर के बाद एक युवक आया और उस युवती से हस-हसकर बाते करने लगा । बूढे को बहुत बुरा मालूम हुआ और वह आसू पीकर रह गया ।

धीरे-धीरे उसकी बारी आई । बूढा डाक्टर के पास जाकर बेच पर बैठ गया । डाक्टर ने उसकी परीक्षा की । वह युवक भी बीच-बीच मे बूढ़े की बीमारी का हाल 'नोट' करता गया । बूढ़े ने युवक को ध्यान से देखा । वह उसके लिए बिलकुल अपरिचित था । नुस्खा लेकर बूढा चला गया ।

एक सप्ताह बीत गया ।

सध्या के समय एक युवती और एक युवक समुद्र के

किनारे जल से थोड़ी दूर पर बैठे वार्तालाप में इस प्रकार निमग्न थे, मानो दुनिया से उनका कोई नाता न हो। युवती युवक की गोद मे सिर रखे उसकी मदभरी ग्राखो मे निहारती थी। युवक युवती के गाल पर चिकोटी काटने लगा। युवती खिल-खिलाकर हस पडी। उसके वसन ग्रस्त-व्यस्त थे। उसकी नाइलोन की चोली के भीतर से उसके ग्रवयव साफ दिखाई दे रहे थे। युवती के केश बिखरे ग्रौर उसमे गुथे फूल दबकर मुरझा गए थे। उसकी ग्राखो मे वासना भरी हुई थी ग्रौर देखनेवाले की कामुकता को उभाडने मे समर्थ थी।

हठात् जोर की हसी गूज उठी। उधर से निकलनेवाले बूढे की दृष्टि उस जोडी पर पडी। बूढ़े का माथा ठनका। ग्रापाद-मस्तक वह काप उठा। वह ग्रपनी ग्राखो पर यकीन नही कर सका। उसके नेत्र गीले हो गए। वहा वह एक क्षण भी ठहर नही सका। विक्षुब्ध हो उसने ग्रपनी ग्राखे दोनो हाथो से बद की। कब वह पीछे घूम पडा ग्रौर कब उसके पैर उसे घसीटकर घर ले ग्राए, उसे ज्ञात नही। उसका पोता ग्राकर जब उसके पैरो से लिपट गया तब उसे वास्तविक स्थिति मालूम हुई।

बूढा ग्रपने भाइयों के साथ ट्रिप्लिकेन में रहता था, जो एकदम समुद्र के किनारे पर बसा मुहल्ला है। वह रोज हवा खाने के लिए समुद्र के किनारे जाता, दो-तीन घटे बैठकर वापस चला ग्राता। कभी-कभी ग्रपने पोतो को साथ ले 'बीच'

पर पहुचता, उन्हे खिलाते हुए अपना समय बिताता। प्रति-
दिन 'बीच' जाने की उसकी आदत-सी लग गई।

कुछ दिन और बीत गए।

'ओडियन' थियेटर के सामने प्रेक्षको की भीड़ लगी हुई थी। दस आने के टिकटघर के सामने जो लबी कतार थी उसमे सबसे पीछे एक बूढा खडा हुआ था। धीरे-धीरे कतार कम होती जा रही थी। बूढा टिकट लेने को बड़ा आतुर था। 'मदर इंडिया' देखने की उसकी बडी इच्छा थी। आज उस इच्छा की पूर्ति होते देख वह मन ही मन बडा प्रसन्न था। उसके पोतो ने उस पिक्चर की कहानी सुनाई थी। उसे एक बार स्मरण करते उसकी कथा मे वह खो-सा गया था। उसके आगे की कतार करीब-करीब टिकट-घर के निकट पहुच गई थी। बूढा वही पर खड़ा रहा, जहा पहले था।

पीछे हार्न की आवाज सुनाई दी तो वह चौककर कुछ आगे बढा और टैक्सी की ओर दृष्टि दौडाई। देखा, वही युवती और युवक टैक्सी से उतरकर एक-दूसरे का हाथ पकड़े थियेटर की तरफ बढ रहे है। बूढा बहुत परेशान हुआ। उसके दिल मे खलबली मच गई। वह मूर्तिवत् खड़े रहकर उनकी तरफ देखता ही रहा।

ड्राइवर के शब्दों ने उसका ध्यान भंग किया। वह डाट रहा था—"ऐ बूढे, क्या तुम टैक्सी के नीचे आकर मरना

चाहते हो ? तुम्हारी ग्रांखे न हो तो क्या कान भी नही है ?"

बूढे ने बडे व्यथित स्वर मे कहा—"टैक्सी के नीचे ग्रा जाता तो ग्रच्छा होता भाई, ये दुर्दिन देखने क्यों पडते ?"

बूढे की जिन्दगी पर विरक्ति देख ड्राइवर हसता हुग्रा टैक्सी ले वहा से चला गया।

बूढा टिकट लेकर थियेटर मे पहुचा। उसके दिल मे ग्राधी उठी हुई थी।

"बेटी !

तुम्हे यह चिट्ठी लिखते मेरा दिल फटा जा रहा है। मेरी ग्राखे ग्रश्रुवर्षा कर रही है। यह पढकर तुम्हारा मन भी व्याकुल होगा। मैं तुम्हे दुःख पहुचाना नही चाहता था। लेकिन विवश हू।

मैंने यहा कुछ ऐसी घटनाए ग्रपनी ग्राखो से देखी जिनका बयान नही कर सकता। यदि मै उन सबका वर्णन करू तो शायद तुम विश्वास नही करोगी। फिर भी उनका परिचय देना मै ग्रपना परम कर्तव्य मानता हू।

वास्तव मे उन घटनाग्रो का उल्लेख करने मे ही लज्जा से मैं दबा जा रहा हू। मैने कभी नही सोचा था कि मेरे प्राण के रहते मुझे ऐसे ग्रप्रिय एव कटु सत्य का परिचय देना पडे। लेकिन परिस्थिति विषम होती जा रही है। ग्रब हम लोग न संभाले तो रहा-सहा ग्रवकाश भी हाथ से छूट जाएगा, फिर

पछताने से कुछ हाथ न लगेगा।

विशेष कुछ लिखने मे मै असमर्थ हूं। साहस करके मै तुम्हारे सामने सच्ची बात खोलकर रख रहा हू। सरला एक युवक के झूठे प्रेमजाल मे फसकर अविवेकपूर्ण व्यवहार कर रही है। तुरन्त यहा आकर उचित व्यवस्था न करोगी तो हमारी नाक कट जाएगी।

यह अप्रिय समाचार देने मे मुझे बड़ा दु ख हो रहा है। आशा है तुम मुझे क्षमा करोगी।

तुम्हारा बूढा दादा
शकरन नायर"

पत्र पढकर सुहासिनी का दिल काप उठा। वह अपने दु ख के आवेश को रोक नही सकी। ऐसा लगा कि उसकी कल्पना के महल उसीकी आखो के सामने धराशायी हो रहे हो। उसने अपनी बहन के सबध मे जो कुछ सोचा था, इस घटना के द्वारा उसके पूरा होने की आशा जाती रही। वह विक्षुब्ध हो उठी। उसके हाथ से पत्र छूट गया। पखे की हवा से पत्र इधर-उधर उड़-उड़कर दीवार और कुर्सियो से टकराने लगा। उससे सुहासिनी को ऐसा मालूम हुआ कि नारी भी यदि अपने स्थान से फिसल जाती है तो समाज मे उसे भी इस पत्र की तरह ठोकरे खानी पडती है।

सुहासिनी कुछ बोल नहीं सकी। शर्म के मारे वह गडी जा रही थी। इतने मे सीतालक्ष्मी ने उस चिट्ठी को लेकर

पढा। उनके रुदन से 'शान्तिनिलय' का सारा वातावरण अशात हो उठा।

१५

मेडिकल कालेज के वुमेन होस्टल के प्रतीक्षालय मे सुहासिनी और सीतालक्ष्मी बैठी हुई थी। उन्होने दर्याफ्त किया तो मालूम हुआ कि सरला बाहर गई हुई है। इतने मे बाहर टैक्सी के रुकने की आवाज़ हुई। सुहासिनी और सीतालक्ष्मी ने खिड़की से बाहर देखा। टैक्सी से एक युवक और एक युवती उतर पड़े। युवक उस युवती से हाथ मिलाकर टैक्सी मे वापस चला गया।

इस दृश्य को देखते ही सुहासिनी के क्रोध का पारा चढ गया। उसका नारीत्व फुफकार कर उठा। उसका चेहरा लाल हो गया। सीतालक्ष्मी सुहासिनी की मुखमुद्रा देख घबरा गई कि गुस्से मे आकर वह कुछ कर न बैठे। उसे समझाया कि जल्दबाजी मे आकर कुछ करना या कहना उचित नही।

सरला को प्रतीक्षालय से गुज़रते देख सीतालक्ष्मी ने पुकारा। किसी परिचित कठ को सुन सरला ने मुड़कर देखा तो उसके पैरो के नीचे से जमीन खिसकती नजर आई। उसका मुख-मडल विवर्ण हो गया। उसका दिल जोर से धड़कने

लगा। किसी अनहोनी बात की कल्पना कर वह रोमाचित हो उठी। घबड़ाई हुई-सी उनके निकट पहुचकर मूर्तिवत् खडी रही।

सबके हृदय स्तब्ध थे। जल्दी ही सचेत होकर सरला ने पूछा, "आने के पहले चिट्ठी लिख देती ? ....."

बात काटते हुए सीतालक्ष्मी बोली—"एक जरूरी काम आ पडा। तुम्हे चिट्ठी लिखने का समय भी नही था। कमरे मे चलो, वही बात कर लेगी।" सरला दोनो को साथ लेकर अपने कमरे मे पहुची।

सरला ने काफी मगवाई। सुहासिनी काफी तो पी रही थी, लेकिन उसका मन बेचैन था। उस समस्या का हल ढूढने मे वह व्याकुल थी।

कुशल-प्रश्न के अनतर सीतालक्ष्मी पूछ बैठी—"तुम कहा गई थी ?"

"सिनेमा देखने।"

"वह युवक कौन है ?"

यह प्रश्न पूछते ही सरला के हृदय पर तीर-सा लगा। वह छटपटाई। कुछ बोल न पाई।

"कहो, बोलती क्यो नही ? तुम्हारे साथ टैक्सी मे जो युवक आया था, वह कौन है ?"—सीतालक्ष्मी ने पूछा।

"वह मेरा मित्र सुरेश है"—सकुचाते हुए सरला बोली।

"पराये पुरुष के साथ सिनेमा जाने में तुम्हे लज्जा नही

आती ?"

"इसमें लज्जा की क्या बात है ?"

"अविवाहिता होकर, अन्य पुरुष के साथ घूमना लज्जा की बात नही है ?"

"यहा तो कई विद्यार्थिनिया पुरुषो के साथ सिनेमा देखने और टहलने के लिए भी जाती है। कोई बुरा नही मानता।"

सुहासिनी गरजकर बोली—"चुप रहो, बकवास मत करो। कौन बुरा नही समझता ? दुनिया अधी नहीं है। लाज-शर्म बेचकर फिर अपनी काली करतूतों का समर्थन करने की हिम्मत करती हो ? बेहया कही की।"

सरला की आंखें चुधिया गई। वह अपनी बहन की मुख-मुद्रा को देख नहीं पाई। उसने कभी भी सुहासिनी के इस रौद्र रूप को नही देखा था। आज क्यो वह इतनी क्रुद्ध है ? उसका मन क्यो इतना अशात है ? अपने मन मे तरह-तरह की विकृत कल्पनाएं कर वह क्यों विक्षुब्ध हो उठी है ?

उसे सुहासिनी का निर्मल प्रेम याद आया। जब कभी वह रूठती थी तो उसे छाती से लगाकर सुहासिनी घटो उसे समझा-बुझाकर मनाती थी। यदि वह खाना नही खाती तो वह भी उपवास करती। बचपन से दोनो कभी अलग नहीं हुई थी। एकसाथ खाती और एक ही पलग पर सोती। उसके प्रति सुहासिनी के मन में कैसा स्नेह का समुद्र उमडता था। वह लाख बुराइया करे, खुशी से सुहासिनी उन्हें माफ

करती थी। माता-पिता के सामने भी उसका पक्ष लेकर कई बार उसे बचाया था। वह किसी भी चीज की मांग करती और पाने के लिए मचलती तो वह तुरन्त मगवा देती थी। उसके लिए सुहासिनी ने जो कुछ त्याग किया था, वह कोई पिता भी न कर पाता।

आज सुहासिनी के दूसरे रूप को देख सरला स्तभित हो उठी। सरला के मुखमडल पर वेदना की रेखाएं खिच गई। उसके हृदय मे तूफान उठा था।

"जवाब क्यो नही देती ?"—सरला को मौन देखकर सुहासिनी ने डाटा।

"इसमे मै कोई बुराई नही देखती"—सरला हिम्मत कर बोली।

"तुम बुराई कहा देख पाओगी ? कामला रोगी को सारी दुनिया पीली ही दिखाई देती है।"

"बेटी, तुम्हे अपने परिवार की प्रतिष्ठा का ख्याल रखना है।"—सीतालक्ष्मी बोली।

"परिवार की प्रतिष्ठा के खिलाफ मैने क्या किया है ?"

"और क्या चाहिए ? भले घर की लड़कियां राह चलने-वाले हर किसीके साथ घूमा करती है ? देखो ये सब लड़किया अपने कमरो मे बैठी कैसे पढ़ रही हैं ? तुम इस बात को बिलकुल भूल गई हो कि पढ़ने आई हो, सैर-सपाटा करने नही।" सुहासिनी तीक्ष्ण स्वर मे बोली।

"यह मत भूल जाओ कि नारी के लिए उसका चरित्र ही उसकी संपत्ति होता है। यदि उससे हाथ धो बैठोगी तो तुम किसीको मुह दिखाने लायक न रहोगी। ये पागलपन की बाते छोड दो। तुम्हे उस युवक को भूल जाना चाहिए। फिर आगे कही उससे मिलोगी तो हमे कुछ कडी कार्रवाई करनी होगी। तुम्हारी पढ़ने की इच्छा नही है तो हमारे साथ अभी चलो।" सीतालक्ष्मी ने कठोर होकर कहा।

सरला मुह ढापकर रोने लगी। रोते-रोते उसकी आखे लाल हो गई। उसने अपने दिल के भीतर प्यार के जो महल बनाए थे, उनपर प्रचड प्रभजन का प्रहार होते देख सरला तिलमिला उठी। कुछ निर्णय करने के लिए समय भी नही था। साहस बटोरकर उसने कहा—"मैने उसे प्यार किया है।"

"क्या कहा? प्यार किया है!"—सुहासिनी झल्ला उठी।

"हां बहन, मैने उससे प्यार किया है। मुझे क्षमा करो।" सरला रो पड़ी।

"यह प्यार नही, मोह है, वासना है, प्रवचना है।"

"नही, कभी नही। सुरेश मुझे धोखा नही दे सकता। उसे मै अच्छी तरह जानती हू।"

"क्या जानती हो, ख़ाक। उसकी चिकनी-चुपड़ी बातो मे आकर तुम समझती हो कि वह तुमसे प्यार करता है। पुरुष तो स्वार्थी होता है! जैसे भ्रमर सुगन्धित पुष्प के चारो तरफ

गुजार करते हुए मंडराता है और उसके मकरद का पानकर निर्दयी हो वहा से चला जाता है, वैसे ही आधुनिक युवक भी युवतियो को केवल उपभोग की वस्तु मात्र मानते है। हा, पुरुषों मे भी अच्छे व्यक्तियो का अभाव नही है। ऐसे व्यक्ति लडकी के माता-पिता अथवा अभिभावक का मनोरथ जानकर ही अपने प्रेम को सार्थक बनाने का प्रयत्न करते है। वे धोखा नही देते। जल्दबाजी मे आकर जो युवक केवल नारी के सौन्दर्य पर रीझकर उसे अपनी ओर आकृष्ट करता है और अपने मोह को प्रेम की सज्ञा देकर अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए आगे बढता है, उससे सतर्क रहना आवश्यक है।"

"मै आखिर केवल यही कहना चाहती हूं कि तुम जिस उद्देश्य को लेकर यहा आई हो, उसकी पूर्ति करो।"—सुहासिनी ने समझाया।

"मै उसे छोड़कर नही रह सकती हूं, बहन ! मैंने भली भाति सोच लिया है। यही मेरा अन्तिम निर्णय है।"

"छि. अब हम तुम्हारा मुह देखना नही चाहती। लेकिन फिर एक बार सचेत करना चाहती हू कि तुम आवेश मे आकर जो कुछ करने जा रही हो, उसका फल भोगोगी। बड़ी बहन के नाते मैंने अपना कर्तव्य किया है। अब तुम्हारी इच्छा !" यह कहकर सुहासिनी और सीतालक्ष्मी वहा से उठी। सरला रोती ही रही।

१६

"तो फिर क्या किया जाए ?"

"मैं भी यही सोच रही हू ।"

"यह बड़ी विषम समस्या है ।"

"इस समस्या का हल ढूढना होगा ।"

"यह उतना आसान नही, जितना तुम समझती हो ।"

"तुम ही सोचकर कोई उपाय बताओ ।"

"लेकिन वह उपाय ऐसा हो जिससे हमारी कोई हानि न हो ।"

"हानि-लाभ की जिम्मेदारी वहन करने में मै असमर्थ हूं ।"

"यह कैसे सभव है ?"

"प्रयत्न करने पर असंभव को भी सभव बनाया जा सकता है ।"

"परन्तु परिस्थितिया अनुकूल हों ।"

"अनुकूल बनाने का प्रयत्न हमे करना होगा ।"

"प्रयत्न करके भी कभी-कभी मानव असफल होता है ।"

"किन्तु साधन अच्छा हो तो साध्य की प्राप्ति अवश्य होती है ।"

"उत्तम साधन उपलब्ध हो तब न ?"

"संसार मे साधनों का अभाव ही क्या है ?"

"अभाव तो किसी बात का नहीं, किन्तु साधन को पहचानने का विवेक हो।"

"हमें अब विवेक से ही काम लेना है।"

मद्रास से वापस लौटते ही सुहासिनी ने इस सबन्ध में उचित सलाह-मश्विरा करने दीनदयाल को बुला भेजा। दीनदयाल सारी बाते सुनकर तुरन्त उचित सलाह न दे सके। यह बडी नाजुक समस्या है। इसलिए दोनों ने एकान्त में गभीरतापूर्वक चर्चा की। किन्तु किसी निर्णय पर न पहुच सके।

सरला वयस्का है। ज़ोर-जबरदस्ती से उसे मनाना असंभव है। क्रोध में आकर उसे डाटे तो हो सकता है कि वह कोई घातक कृत्य कर बैठे। अथवा अपनी बात पर अडकर वह सुरेश से शादी भी कर ले। दोनो तरफ से परिवार की प्रतिष्ठा मे कलंक ही लगेगा।

स्वभावतः मानव का हृदय कोमल और भावुक होता है। इस भावुकता के कारण ही व्यक्ति कभी-कभी अपनी सीमा लाघकर कुछ कर बैठता है। यदि वह किसी वस्तु अथवा मनुष्य के प्रति आकर्षित होता है तो उसके लिए अपना सब कुछ अर्पण कर बैठता है। अपने लिए कुछ बचाकर नहीं रखता। उस वक्त वह यह नही देखता कि इसके उपरांत उस-पर क्या बीतता है। आकर्षण मे जो लगाव है, उसका वेग इतना तीव्र होता है कि दो वस्तुओं के मध्य में वह अंतर रहने

नही देता । यदि कोई अतर बनाए रखने का प्रयत्न करता है तो कभी-कभी उसमे दब भी जाता है ।

व्यक्ति की प्रतिष्ठा तब तक होती है जब तक वह अपनी मर्यादा का अतिक्रमण नही करता । भूल या असावधानी से यदि उसका पैर फिसल गया तो वह अपनी टाग तोड बैठता है ।

मानव-मानव के बीच जो स्नेह का नाता है वह इतना कोमल और नाजुक होता है कि एक ही शब्द से वह नाता जुड़ भी सकता है और तोडा भी जा सकता है । वे ही स्नेह और क्रोध कहलाते है । इन दोनों का उद्गमस्थल हृदय ही है । ऐसे परस्पर विरोधी तत्त्वो के सम्मिश्रण का निवास हृदय के भीतर होता है । उन्ही तत्त्वों को लेकर व्यक्ति महान है । उसमें दुर्बलताएं भी है और खूबिया भी । किन्तु विचित्रता यह है कि कभी खूबिया उभर आती है, तो कभी दुर्बलताए । इसीलिए कभी जान देता है तो कभी लेता है । कभी रोता है तो कभी रुलाता है । कब भावावेश मे आकर क्या कर बैठता है, कुछ कहना कठिन है । पल-पल में परिवर्तित होनेवाले मानव के हृदय में कौन-सी ऐसी सूक्ष्म तन्त्रिया है जो मीठी तान भी सुनाती है और खमाच की शोकपूर्ण राग-रागिनिया भी । आज तक कोई भी मानव के इस मनोवैज्ञानिक मर्म को जान नही पाया । क्योंकि मनुष्य इन परस्पर विरुद्ध तत्त्व रूपी तार पर असंतुलित हो नृत्य कर रहा है । न मालूम कब वह

अपने इस सतुलन को खो बैठे ।

मानव जीवन एक पहेली है । खूबी यह है कि प्रत्येक जीवन की अपनी विशेषताए होती है और अपनी समस्याए । इन्हे सुलझाने के लिए कोई एक फार्मूला काम नही दे सकता है । क्योकि व्यक्ति की परिस्थितिया और परिवार का वातावरण भिन्न होता है । अत उनके अनुरूप उन-उन समस्याओ का समाधान ढूढने का प्रयत्न होना चाहिए । किसी व्यक्ति की समस्याए यू ही सुलझ जाती है तो किसीकी उलझ भी जाती है । यही पर व्यक्ति को सोचना पडता है और विवेक का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है ।

सुहासिनी अपने पिता की मृत्यु के उपरात भविष्य की कल्पना न कर दिन बिताती रही । पैतृक सपत्ति ने उसे विशेष रूप से सोचने का अवसर नही दिया । किन्तु खर्च अधिक और आमदनी नही के बराबर होने के कारण जो कुछ सपत्ति थी वह घटती जा रही थी । यदि यही क्रम रहा तो कुछ समय मे उस संपत्ति के समाप्त होने की सभावना है । फिर क्या होगा ?

मनुष्य दो प्रकार के होते है । कुछ लोग केवल आज के दिन को आनंदपूर्वक बिताने के पक्ष मे है, कुछ लोग कल का भी ख्याल रखते है । दूसरे वर्ग के लोगो ने ही सपत्ति-संचय करने की तरकीब निकाली । क्योकि मनुष्य सदा कमाने का अवकाश नही पा सकता । बीमारी और मृत्यु भी उसके परिवार को पंगु बना सकती है । अत. भविष्य का ख्याल रखना आवश्यक

ही नही अपितु अनिवार्य हो जाता है ।

सुहासिनी के सामने अपनी संपत्ति बढाने की कामना है। लेकिन उसकी पूर्ति कैसे हो ? उसने बहुत सोचा । किन्तु किसी निर्णय पर वह पहुच नही सकी । उसने अपने हितैषी दीनदयाल को खबर भेजी । सीतालक्ष्मी और राजाराम भी इस चर्चा मे शामिल हुए । सपत्ति को बढ़ाने के लिए राजाराम ने एक फिल्म बनाने की सलाह दी । इस मामले पर काफी बहस हुई। दीनदयाल ने सुझाव दिया कि एक तो इसमे लाखो रुपये लगाने पड़ते है, और दूसरी बात निश्चित रूप से लाभ होने की आशा नही । कभी-कभी पूरी पूजी के डूब जाने का खतरा है । अत. यह त्याज्य है ।

सीतालक्ष्मी ने बहुत सोच-समझकर सलाह दी कि व्यापार ऐसा हो जिससे कभी नुकसान होने की सभावना न हो, मूल पूजी वैसी ही बनी रहे और लाभ बराबर मिलता हो।

सुहासिनी कुछ निर्णय नही कर सकी । दीनदयाल गभीर होकर सोचते रहे ।

राजाराम ने उछलकर कहा कि टैक्सी का व्यापार सबसे अधिक लाभदायक है । इसपर भी बहस हुई । लेकिन टैक्सी खरीदना, ड्राइवरों पर नियंत्रण रखना, टैक्सी की मरम्मत का प्रबंध करना इत्यादि कई तरह की कठिनाइया हैं । इसलिए यह भी उतना व्यावहारिक नही है ।

मकान बनाकर किराये पर देने की बात भी सोची गई ।

लेकिन इसमें भी किरायेदारो से भाडा वसूल करने और उन्हे सब तरह की सुविधाए पहुचाने सबन्धी बाधाओ को देखते हुए, इसे भी अमल मे लाने से त्याग दिया गया।

अत मे दीनदयाल ने यही पूजी सिनेमा-थियेटर बनाने में लगाने की सलाह दी। उन्होने समझाया कि आजकल सिनेमा देखनेवालो की सख्या बढती जा रही है। थियेटर कभी खाली नही रहता। उससे मूल पूजी के डूबने का डर नही है। साथ ही लाभ ही लाभ होता है।

उन्होने यह भी बतलाया कि वे अपने प्रभाव से सिनेमा-थियेटर के लिए लाइसेन्स दिलवा देगे।

यह सलाह सबको पसंद आई।

इसके लिए आवश्यक सारा प्रबध करने का भार दीनदयाल और राजाराम को सौपा गया।

१७

लता जब वृक्ष का सहारा पाती है तो वह अत्यंत वेग के साथ बढ़ती जाती है। जितना अधिक वह उस वृक्ष से लिपटती है, उतनी ही वह स्थिरता पाती है और फैलने लगती है। अत मे अधिक पल्लवित और पुष्पित हो फल भी देने लगती है। किन्तु वह फल कडुवा है अथवा मीठा, तभी

बताया जा सकता है जबकि फल चखा जाता है।

सरला और सुरेश का प्रेम दिन ब दिन बढ़ता ही गया। एक-दूसरे को छोडकर रहने मे कठिनाई का अनुभव करने लगे। पढाई मे उनको उतनी दिलचस्पी न थी जितनी कि एक-दूसरे के संग बैठकर दिल को गुदगुदानेवाली बाते करने और स्पर्शसुख पाने मे। इसके लिए वे सदा मौका ढूढा करते। चाहे जितना भी खर्च क्यों न हो वे अक्सर सिनेमा-थियेटर, बीच, नौका-विहार, घुडदौड इत्यादि मे जाते थे। ये ही उनके मिलने के स्थान थे, जहां दिल खोलकर बात कर सकते थे और आमोद-प्रमोद भी।

प्रेम गहरा होता गया। उसका रग इस प्रकार चढ़ता गया कि अब उसका धुलना सभव नही था। उसके नशे मे दोनों अपने होश-हवास खो बैठे। व्यक्ति एक बार फिसल जाता है तो वह बराबर फिसलता ही जाता है। फिर अपने पैर जमाने का प्रयत्न नही करता।

सरला और सुरेश को पूर्ण स्वतत्रता प्राप्त थी। उसका वे अच्छे कामो मे सदुपयोग भी कर सकते थे और दुरुपयोग भी। अपने परस्पर परिचय का वे अन्य मार्गो मे लाभ भी उठा सकते थे। लेकिन उन्होने जो मार्ग अपनाया उसपर वे चलते ही रहे।

एक दिन दोनों सिनेमा देख रहे थे। उसमे प्रेम का एक जैसा प्रसग आया जो उन दोनो के आकर्षण से साम्य रखता

था। उसमें एक युवती और एक युवक परस्पर प्रेम करते है, उस प्रेम मे पागल हो अपने कर्तव्य को भूल जाते है। बीच में असख्य विघ्न-बाधाये उपस्थित होती है। उसमे वे नाना प्रकार की कठिनाइया झेलते हैं। अंत मे वे उनपर विजय प्राप्त करके दापत्य के सूत्र मे बध जाते है।

उस कहानी मे ऐसी रोमाचक घटनाए दिखाई गई जिन्हे देखते अपने मन पर काबू न कर सकनेवालो का फिसलना स्वाभाविक है। सरला और सुरेश इस मार्ग के पथिक ही रहे। उन्हे कहानी में चित्रित वे घटनाए अनुकरणीय जची। सुरेश ने सरला को खीचकर अपने आलिगन मे लिया और कसकर उसके अरुणिम अधरो और कपोलो पर चुम्बन अकित करता गया। इस स्पर्श से सरला को एक विचित्र अनुभूति हुई।

उसका शरीर रोमावित हो उठा। परन्तु वह स्थान उस अनुभूति को तृप्त करने का नही था। इसीलिए वह उस अनुभूति के लिए व्याकुल रहने लगी।

अनुभूति क्षणिक होती है। यह अव्यक्त आनन्द प्रदान करती है। व्यक्त जगत का प्राणी अव्यक्त अनुभूतियों का उपासक होता है। अव्यक्त मधुरिमा व्यक्ति को जो तन्मयता प्रदान करती है वह क्षणिक होते हुए भी प्रभावशाली होती है। इसलिए अतृप्त होती है।

तृप्ति मे मनुष्य विरक्त होता है। अतृप्ति मे अनुरक्ति है। अनुरक्ति ही मनुष्यो मे जीने की आशा जगाती है। जीवन

में बराबर उन अनुभूतियों को चखकर मनुष्य उसका आनद लूटना चाहता है ।

अतृप्ति मे ही जीवन है ।

प्रत्येक का जीवन अपने ढग का अलग होता है । जीवन-क्रम की निश्चित परिभाषा नही दी जा सकती । हर कोई अपने ढग से सोचता है, अपने विचार को सर्वोपरि मानता है । एक की जीवन-प्रणाली दूसरे को भाती नही । चाहे वस्तु जितनी ही उत्तम हो उसकी प्रशसा के साथ उसकी निन्दा भी अवश्य होती है । गुण-दोषो से युक्त प्रकृति मे यह विविधता उसकी विशेषता कही जा सकती है । यह विशेषता व्यक्तियों मे भी देखी जा सकती है ।

सरला दिन-प्रति दिन सुरेश की ओर आकृष्ट होती गई । सुरेश भी उसको अपनी ओर आकृष्ट बनाए रखने के लिए हर तरह की कोशिश करता रहा । यह क्रम बहुत समय तक चलता रहा ।

सृष्टि का यह विचित्र गुण है कि दो वस्तुओं के मेल से एक नई व तीसरी वस्तु का उद्भव होता है । उस वस्तु मे उन दोनो वस्तुओ के गुण, तत्त्व, रग, आकार इत्यादि पूर्ण मात्रा में, आशिक मात्रा मे अथवा मिश्रित रूप मे भी पाए जाते हैं । दो वस्तुए अपने कुछ अश का त्यागकर तीसरी वस्तु के प्रादुर्भाव का कारणभूत बन जाती है । दो वस्तुओ का मेल चाहे इच्छा से हो या अनिच्छा से लेकिन सृष्टि अपना काम

करती जाती है। कभी उस नई वस्तु का बडे हर्ष से स्वागत होता है, तो कभी बड़ी निराशा के साथ। वस्तु तो जगत के सामने उपस्थित हो अपने अस्तित्व का परिचय दे देती है। वस्तु के निर्माण के कारण विचित्र होते हुए भी सहज हैं।

सरला अपनी इन्द्रियो की तृप्ति का शिकार बनी। वह वराबर उसकी तृप्ति करती गई। मनुष्य अपनी तृप्ति के लिए प्रयत्न करता जाता है। उस तृप्ति के आनन्द मे अवाछित परिणाम का वह ख्याल नही करता। सरला उसका अपवाद नही है।

दिन बीतते गए। हठात् एक दिन सरला ने अनुभव किया कि उसका सिर चकरा रहा है। उसे कै हुई। और बराबर वह क्रम कुछ समय तक जारी रहा। वह समझ नही पाई कि आखिर इसका कारण क्या है ? उसने अपनी हालत सुरेश से बतलाई। सुरेश ने डाक्टर की सलाह लेना उचति समझा। जब एक लेडी डाक्टर से परामर्श लिया गया तब उन्हे मालूम हुआ कि सरला एक नये प्राणी का भार वहन कर चुकी है।

क्षेत्र मे बीजारोपण होता हे तो वह बीज उचित वातावरण पाकर फूल जाता है। और अपने मे व्याप्त अंकुर को प्रकट कराने को छटपटाता है। एक दिन पृथ्वी के गर्भ को चीरकर इस विशाल प्रकृति में अपने अस्तित्व का परिचय देता है।

नारी क्षेत्र है। उससे शिशुरूपी अकुर फूटता है। क्रमशः वही मानव रूपी विशाल वृक्ष हो जाता है। सरला के गर्भ में

बीज क्रमश अपने अकुर-रूप को प्राप्त करता गया। उसका अस्तित्व बाहर अपना परिचय देने लगा। गर्भ बढता गया। अपने पेट को बढते देख सरला व्याकुल हो उठी। उसका सारा आनन्द अब भय के रूप मे परिणत हुआ। उसे लगा कि उसकी भूल का परिणाम उसके पेट मे प्रवेश करके उसे धमका रहा है। उसकी आखो के सामने अधेरा छा गया। और सारा उत्साह ठण्डा पड़ गया। अब तक उसने जिस जीवन को रसमय एव आनन्दप्रद माना था वह अब नीरस प्रतीत होने लगा। दुनिया और समाज की परवाह न करके सुख-सागर मे तैरती रही, अब वही अपनी उत्तुग लहरो की लपेटो से डुबाता नजर आने लगा। समाज के कठिन नियमो के सामने वह अपराधिनी-सी प्रतीत होने लगी। ग्लानि से वह दबती गई।

सरला का जीवन अब दु खमय प्रतीत होने लगा। अपनी बहन के स्मरण-मात्र से ही वह थर थर काप उठी। अब वह उसको अपना चेहरा कैसे दिखा सकेगी ? उसने समझाया भी था। लेकिन उस वक्त उसके विवेक पर परदा पड़ा हुआ था। लोगो के सामने आने मे उसे झिझक होने लगी। समाज की दृष्टि मे आख बचाकर अब फिरना होगा। वह कही भी जा नही सकेगी। सब उसकी ओर घूर-घूरकर देखेगे। उगली उठा-उठाकर उसकी अवहेलना करेगे। 'कुलटा' कहकर उसकी निन्दा करेगे।

व्यक्ति ही समाज, धर्म, इत्यादि सबका निर्माता है। फिर

भी उसका समाज मे तब तक आदर है जब तक वह उसके विधानो का पालन करता है और उस लीक से जरा भी हटता नही। यदि वह इन नियम-रूपी रेखाओ का अतिक्रमण करता है तो वह समाज की दृष्टि मे गिर जाता है। नारी एक छोटी-सी भूल करती है तो वह तुरन्त प्रकट हो जाती है। समाज उसको तिल का ताड बनाकर उसे हर तरह से तग करने को सोचता है। सदा से समाज नारी को दबाता आ रहा है। अपने नियम-रूपी पजो मे फसाकर उसे नोचने, कुरेदने और घायल करने मे आनन्द का अनुभव करता आ रहा है। नारी ने उस अध व्यवस्था के चक्र मे पिसकर भी उसका विरोध नही किया। वह पिसती जा रही है और पिसती जाएगी।

सरला ने प्रेम किया। प्रेम करना अपराध नही। किन्तु उसका परिणाम एक भयकर वात्याचक्र के रूप मे उसके सामने उपस्थित हुआ। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो वह उसे अपनी लपेट में लेने के लिए कृत निश्चय हो आगे बढा आ रहा है। सरला के शरीर में कपन अधिक हुआ। भय से संत्रस्त हो सिहर उठी। उसने निश्चय किया कि अब वह दुनिया को मुह दिखा नही सकेगी।

जीवन से निराश हो सरला ने 'पोटाशियम साइनाइड' लेकर अपने दु:खो का निवारण करना चाहा।

१८

दीनदयाल ने बड़ी दौड-धूप के बाद थियेटर निर्माण-सबधी लाइसेन्स दिला दिया। एक अच्छे इजीनियर के द्वारा थियेटर-का प्लान तैयार कराया और उसे स्वीकृत भी कराया। थियेटर निर्माण के लिए आवश्यक सारी तैयारिया सुहासिनी और राजाराम ने की।

निर्माण का कार्य शुरू हुआ। राजाराम के पर्यवेक्षण मे कार्य तेजी के साथ होने लगा। सुहासिनी ने उसकी पूरी जिम्मेदारी राजाराम को सौपी। वही निर्माण-सम्बन्धी सामग्री का सचय करता और कार्य की देखभाल किया करता।

राजाराम ने पहले सोचा था कि बिना किसी काम-धन्धे के सुहासिनी के घर में रहते उसकी रोटिया तोड़ना अच्छा नही होगा। इसलिए पहले उसे झिझक भी हुई। लेकिन अब वह इस तरह से उसका प्रत्युपकार करते हुए खुशी का अनुभव करने लगा। यो तो उसे अपने घर खाने-पीने की कमी न थी। वह अपना खर्च आप उठा सकता है। किन्तु सुहासिनी मानती न थी। अलावा इसके यो ही दिन बिताने मे राजाराम को मानसिक परिताप भी होता था।

राजाराम का समय बडा अच्छा बीतने लगा। उसके हाथ मे करीब तीन लाख रुपये थे। वह इन रुपयो का खर्च अपनी इच्छा के अनुसार कर सकता है। उसके अधीन कई मजदूर

और कर्मचारी है। उनको वह डाट सकता है, काम से निकाल सकता है, काम दे सकता है। इस अधिकार को लेकर उसे मानसिक सतोष और कभी-कभी अभिमान भी होने लगा।

व्यक्ति के हाथ मे जब अधिकार और धन आ जाता है तब उसमे गर्व की भावना भी आ जाती है। उसके अपवाद भी हो सकते है, किन्तु अधिकाश व्यक्तियो मे यह परिवर्तन देखा जा सकता है। अधिकार मे समानता की भावना लुप्त हो जाती है। यही पर व्यक्ति दो वर्गो मे बट जाता है। धन की भी यही बात है। एक देनेवाला वर्ग होता है, दूसरा लेनेवाला। देनेवाला वर्ग यह सोचता है कि हमारे कारण यह वर्ग जीवित है। हमारी कृपा पर ये लोग निर्भर है। इस कारण उस वर्ग को निम्न और श्रमिक मानकर उनपर सदा अकुश रखने की कोशिश करता है। लेकिन यह भूल जाता है कि उस वर्ग के श्रम से ही वह अपनी पूजी बढा सकता है तथा श्रम का मूल्य रुपयो से आका नही जा सकता है।

दूसरा वर्ग आर्थिक दृष्टि से परावलबी है। उदर-पोषण जो कि व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकता है, उसकी पूर्ति अर्थ के द्वारा ही हो सकती है। अत. यह वर्ग स्वाभाविक रूप मे दबा रहता है। शोषित होता है। यही पर शोषण के लिए गुजाइश होती है।

इस रहस्य को राजाराम भली भाति जान गया।

धन मे कौन-सी महिमा है, कहा नही जा सकता। अच्छे

से अच्छा व्यक्ति भी धन के आ जाने से बदलते देखा गया। व्यक्ति की आवश्यकताए और उसकी कामनाओ की पूर्ति का सर्वोत्तम साधन धन है। धन के सग्रह होने पर कुछ लोग लोभ मे पडकर उसे और भी बढाने की कोशिश करते है, कुछ लोग दुनिया-भर की कामनाओ की पूर्ति के लिए लालायित होते है। धन मे यह चचलता है अथवा व्यक्ति के चरित्र मे, यह विवादाश है। परन्तु इतना निश्चित है कि धनी व्यक्ति को ऊची सोसाइटी के सदस्य बनकर अपने आडम्बर के लिए खर्च करते देखा गया है। ऊची सोसाइटी के अग कई कहे जा सकते है। उनके मनोरजन के लिए नाना प्रकार के साधन ढूढे गए है। उनमे ताश खेलना, घुड़-दौड, न्यूयार्क काटन मार्केट, मदिरा-सेवन आदि मुख्य है। ऊची सोसाइटी मे इनका आदी न होना असभ्यता का चिह्न माना जाता है। इनमे पैसा पानी की तरह बहाया जाता है।

राजाराम के हाथ मे जब एक साथ इतना धन आया तब वह कुछ समय तक बडी ईमानदारी के साथ पैसा खर्च करता था। उसकी अन्तरात्मा यह बताती रही कि विश्वासघात करना उचित नही।

पहले वह सभी प्रकार के व्यसनों से दूर एक अबोध युवक था। थियेटर-सम्बन्धी काम पर उसे कई बार मद्रास जाना पडा और ऊची सोसाइटी के लोगो से भी सपर्क स्थापित करना पड़ा। उस सोसाइटी के लोगों से अक्सर मिलते रहने के

कारण परोक्ष रूप से उनका प्रभाव राजाराम पर पडता गया। अपना काम बनाने के लिए उसे कभी-कभी अनिच्छा से ही सही उनका अनुकरण करना पड़ा।

अनुकरण भी विचित्र वस्तु है। अच्छाई का अनुकरण करने मे कई साल लग जाते है। आत्मनियन्त्रण की आवश्यकता होती है। सत्सकल्प और निष्ठा के बिना अच्छाई का अनुकरण सभव नही। उसके बावजूद व्यक्ति उसके अनुकरण मे असफल होता है। बुराई का अनुकरण करने की आवश्यकता ही नही। अनजाने मे ही मनुष्य उसका अनुकरण करता जाता है। फिर भी वह यह नही सोचता कि वह बुराई का शिकार हो गया है।

बुराई एक नशा है। नशे मे मदहोश व्यक्ति जैसे अच्छाई-बुराई का विवेचन नही कर पाता है, वही हालत बुराई के शिकार हुए लोगो की है। तब तक मनुष्य नही चेतता जब तक वह पूर्ण रूप से गड्ढे मे गिर नही जाता है। कोई जबरदस्त धक्का लगता है तभी वह आखे खोलता है।

राजाराम ऊची सोसाइटी के अनुकरण में दुर्व्यसनो का शिकार हुआ। वह अकसर क्लबों मे जाता, ताश खेलता, कभी-कभी सुरापान भी करता और रात के दस बजे घर लौटता। सीतालक्ष्मी और सुहासिनी सोचती कि राजाराम काम की भीड़ में पिसता जा रहा है। मन ही मन वे दोनों अपनी सहानुभूति उडेलती। राजाराम इस प्रकार झूठा यश

प्राप्त करता गया। वह भी ऐसा अभिनय करता, जैसे अत्य-धिक कार्य से थक गया हो।

सप्ताह और महीने बीतते गए।

राजाराम दिन-प्रतिदिन व्यस्त दिखाई देने लगा। उससे मिलने आने-जानेवालो की सख्या बढती गई। समाज मे भी वह उदार, धनी और सभ्य माना जाने लगा। उसकी झूठी प्रतिष्ठा बढती गई। रुपयो की आड मे यद्यपि वह उपर्युक्त गुण अपने ऊपर लादता गया, लेकिन उसके चोले के भीतर असली राजाराम कभी का लुप्त हो गया था।

राजाराम अपनी स्थिति को पहचान नही पाया। दूसरो की नकल मे ताश खेलते समय और घुडदौड के समय भी बाजी लगाता, लोगो की वाहवाही पाकर उछल पड़ता। वह इस प्रकार एक विचित्र दुनिया का प्राणी बना!

अपने बुरे व्यसनो मे राजाराम खर्च करता गया। उसके हाथ मे धन था और स्वतन्त्रता भी थी। होटलो का अभाव न था। मन पर काबू तो था ही नही। इसलिए राजाराम की वह हालत हुई जो एक बे-लगाम घोड़े की होती है। वह पहले की तरह थियेटर के काम मे उतना उत्साह और दिल-चस्पी नही रखता था। दिन मे एक बार वहा पर पहुचता, ठेकेदार को आवश्यक सूचनाए देकर चला जाता। थियेटर का काम जारी रहा।

बेहद आजादी इन्सान को बिगाड़ देती है, तो कभी-कभी

उसे बनाती भी है। उसका इस्तेमाल अकल से होना चाहिए। अकल के अभाव मे ऊची सोसाइटी की नकल भी खतरनाक हो जाती है। यदि एक बार व्यक्ति को उसका चस्का लग जाता है तो फिर वह छुडाए भी नही छूटता। तब वह न घर का न घाट का हो जाता है।

राजाराम कृत्रिम सभ्यता की नकल करता गया। उसने समाज मे अपनी धाक जमाने की कोशिश की। बड़े व्यक्ति के रूप मे सम्मानित होना चाहता था। इस लोभ मे वह अपने स्वाभाविक गुणो को छोडकर कृत्रिम जीवन व्यतीत करने लगा। इस जीवन मे उसे आराम तो अवश्य मिलता था लेकिन आत्म-संतोष नही।

राजाराम को पता न था कि अपने इस आचरण का परिणाम क्या होगा ?

१९

"तुम इतनी हताश क्यों हुई हो ?"

"नही तो क्या करती ?"

"मैं पूछता हू, तुम्हे किस बात की कमी हुई है ?"

"सुरेश, अबोध की तरह मत बोलो। इस समय आत्म-हत्या के सिवा मेरे सामने कोई दूसरा चारा नही !"

"मै नही पहुंचता तो तुम आत्मत्याग कर चुकी होती। मैंने कभी नही सोचा था कि तुम इतने दुर्बल मन वाली हो।"

"अनुभव करनेवालों पर क्या बीतता है, उसे पराये लोग क्या समझ सकते है ?"

"मुझे क्या परागा समझती हो ?"

"अपना ही समझू तो तुम क्या कर सकोगे ?"

"मैं तुम्हारे लिए क्या नही कर सकता ? हम दोनो एक दूसरे से भिन्न नही है। एक का कष्ट दूसरे का भी है। हम सुख और आनद का जैसे समान रूप मे अनुभव करते है, वैसे ही दु.ख और कष्टो का भी करेगे। मै तुम्हारे लिए सब-कुछ करने के लिए तैयार हू, तुम मुझपर यकीन करो। तुम्हारे बिना मैं एक क्षण भी जीवित नही रह सकता। जरूरत पड़ने पर इसे मै साबित करूगा।"

"तो मै एक बात पूछू ?"

"बेशक !"

"बात के पक्के रहोगे न ?"

"ज़रूर, जरूर। चाहो तो जाच कर देखो······

"तब तो हमारे विवाह का प्रबन्ध करो।"

सुरेश का चेहरा सहसा पीला पड गया। उसके मुख-मडल पर चिन्ता की रेखाये खिच गई। सरला उसके मनो-भावों का अध्ययन करने लगी।

सकुचाते हुए सुरेश ने कहा—"विवाह का प्रबन्ध इतनी

जल्दी कैसे हो सकता है ?"

"क्यो नही, हम चाहे तो कल भी कर सकते है।"

"ऐसी जल्दी क्या आ पडी है ? हमारा विवाह होगा और जरूर होगा। इस बात को तुम गाठ बाध लो। सुरेश कभी अपनी बात नही बदलता है।"

"ठीक है बाबा, मैं जानती हू। लेकिन इसी समय होना हमारे लिए हितकर होगा।"

"अहित तो मैं कभी नही चाहता। जल्दबाजी मे कोई काम नही होता। समय आने पर सब कुछ ठीक हो जाता है। घबडाओ मत। कोई न कोई उपाय निकल ही आएगा।"

"उपाय की प्रतीक्षा करते हम बैठे नही रह सकते। समय बीतता जा रहा है और पेट भी बढता जा रहा है। यह खबर किसीके कानो मे पहुचने के पहले ही हमे उचित व्यवस्था कर लेनी होगी।"

"मै लाख समझाता हू तो तुम नही मानती। अपना ही राग अलापती जाती हो। क्या मुझपर शक करती हो ?"—विकृत स्वर मे सुरेश बोला।

"शक करने की बात नही। इस रहस्य का पता लग गया तो होस्टल और कालेज से हमे निकाल देगे। हमारे मुह पर कालिख पुत जाएगी। हम अपने घरवालो को भी मुह दिखाने लायक नही रह सकेगे।"

"तब तो मैं एक उपाय बताऊ।"—सुरेश ने कहा।

"जल्दी बताओ। मेरी जान क्यों लेते हो?"

"बुरा नहीं मानोगे न?"

"बुरा मानने से समस्या का समाधान नहीं होगा। हम किसी भी उपाय से इस आफत को दूर कर सकते हैं, तो मुझे बड़ी खुशी होगी।"

"किसी लेडी डाक्टर से सलाह लेकर गर्भस्राव कराएं तो?"

"जान का खतरा नहीं है, न?"

"बिलकुल नहीं, तुम निश्चिन्त रहो, मैं व्यवस्था कर दूंगा।"

कमला ने विवश होकर मान लिया।

व्यक्ति अपनी इन्द्रियों की तृप्ति के लिए विवेक को ताक में रखकर आंख मूंदे कुछ भी कर बैठता है। उस समय भावी परिणाम का कदापि विचार नहीं आता। जब पूर्ण रूप से किसी समस्या में उलझ जाता है तब छटपटाते हुए पश्चात्ताप करते हुए उससे बाहर निकलने का प्रयत्न करता है। उस समय यह नहीं देखता कि जिन साधनों के जरिये वह बाहर निकलना चाहता है, वे उपयुक्त हैं कि नहीं, उसका लक्ष्य केवल यही होता है कि किसी न किसी उपाय से बच जाए तो काफी है। इस प्रकार अपनी गलती को छिपाने के लिए दूसरी गलती करता है, फिर गलतियां करता ही जाता है। यही कारण है कि जो व्यक्ति एक बार अपने स्थान से गिरता है,

फिर वह ऊपर उठने का नाम नही लेता।

कुछ लोग जान-बूझकर स्वार्थ के लोभ मे पडकर गड्ढे मे गिरते है, कुछ लोग अनजाने मे। लेकिन उसका फल सबको समान रूप से भोगना पडता है। कुछ लोगो को गिरने में आनद है तो कुछ लोगो को ऊपर उठने मे। आनद सबका एक तरह का नही होता। वह फल-भोक्ता की अभिरुचि पर निर्भर है।

कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि दो व्यक्ति किसी कार्य के समभागी होते हुए भी दूसरे को गड्ढे मे गिराकर आप बाल-बाल बच जाता है और कभी-कभी गिरे हुए को देख दात दिखाते हुए उपहास भी करता है। ऐसी हालत मे भोक्ता पर क्या बीतता है, भुक्त-भोगी ही जानता है।

सरला और सुरेश ने गर्भ गिराने के अनेक प्रयत्न किए। लेकिन असफल रहे। परिस्थिति दिन-ब-दिन नाजुक होती जा रही थी। सरला खाना-पीना छोड रोती ही रहती। एकात में बैठकर अपनी करनी पर पछताती। उसे अपना भविष्य अन्धकारमय दिखाई देने लगा। हर मिनट उसे डराता हुआ प्रतीत होता। वह अपने इस रहस्य को छिपाने के लिए हर व्यक्ति से डरती। प्रकाश से भी डरती। सदा कमरे मे ही खोई-सी चमगादड़ की भांति पड़ी रहती।

काल-चक्र के परिभ्रमण में कई दिन बीतते गए। सरला का होस्टल मे रहना खतरनाक था। सुरेश ने सरला को छुट्टी

लेने की सलाह दो। सरला को आसानी से छुट्टी मिल गई। कालेज से दूर एक मुहल्ले मे किसी तग गली मे जहा कि लोगो का आना-जाना भी कम होता है, किराये पर एक कमरा लेकर सरला रहने लगी। सुरेश बराबर आता-जाता रहा।

२०

एक कील की वजह से सारा राज्य खो जाता है।

थियेटर का निर्माण चलता रहा, पर मद गति से। उचित पर्यवेक्षण के अभाव मे कार्य-कुशल कारीगर भी आलसी हो जाते है। थियेटर के निर्माण की देख-रेख करनेवाला इजीनियर बहुधधी आदमी था। वह बाते अधिक बनाता, हथेली मे स्वर्ग दिखाता। पर जब तक उसे बढिया टिफन और गोल्डफ्लैक सिगरेट का टिन उपहार मे नही दिया जाता, तब तक वह काम मे दिलचस्पी न लेता। उसे प्रसन्न रखना राजाराम के लिए आवश्यक हो गया।

राज, बढई, मजदूर भी पहले उत्साह दिखाते रहे, लेकिन ज्यो-ज्यो काम बढता गया, त्यो-त्यो वे भी अपने असली रूप का परिचय देने लगे। मिस्त्री का उत्साह ठडा पड़ गया। उसने चार-पाच जगह मकान बनाने का ठेका लिया था। उनका निरीक्षण करना भी जरूरी था। मिस्त्री के रहते समय

राज और मजदूर काम मे गति लाते, उसके वहा से जाते ही हसते, वार्तालाप करते और गाते अपना समय यू ही काट देते, उनमे कुछ ऐसे मजदूर भी थे जिन्हे बहुत दिनो से काम नही मिला था। उस काम को धीरे से घसीटते एक साल और गुजार देना चाहते थे।

बढई और मिस्त्री ईंट, चूना और लकडी खरीदते समय अपने कमीशन की सुरक्षा की उचित व्यवस्था पहले ही कर देते। इसलिए वस्तुओ का मूल्य बाजार-भाव से अधिक चुकाकर राजाराम को अपना काम चलाना पड़ता।

ये सारी बाते राजाराम को तब मालूम हुई जब कि थियेटर का निर्माण आधे से ज्यादा हो चुका था। लेकिन तब पछताए होत क्या जब चिडिया चुग गई खेत।

राजाराम पहले से ही लापरवाह था। किसी काम को दिलचस्पी के साथ पूरा करना उसके स्वभाव के विरुद्ध था। ऊची सोसाइटी की नकल ने उसे और भी तबाह कर दिया। ताश खेलने मे और घुड-दौड़ मे आख मूदे रुपये लगाता रहा। कभी तैश मे आकर बडी-बडी रकमो की बाजी लगाता और उसमे अपना सब कुछ खोकर मुह लटकाए घर लौटता। वह सदैव इन खेलो मे रुपये खोता ही था। जीतता कभी नही था। बडी भारी रकम जीतने की उसकी लालसा इससे और भी प्रबल होती गई। वह सोचता, रकम कभी जाती है तो कभी आती भी है। न मालूम मुझे एक और बाजी में भारी रकम

हाथ लगे। मै अभी हाथ खीचकर अपनी किस्मत को खोटा क्यो बना दू ? इस प्रलोभन मे पडकर वह रुपया लगाता ही गया। आखिर उसको लेने के देने पडे। वह इस रास्ते इतना दूर आगे बढता गया था कि अब लौटना सभव न था। भले ही उसे वहा पर ठिकाने की जगह न हो।

बुरी सगति मे पड़कर राजाराम ने सुरापान की जो आदत डाली वह इतनी अधिक हो गई कि उसका असर तबीयत पर भी पडने लगा। कभी-कभी एकात मे बैठकर वह अपनी स्थिति पर बहुत पछताता। मन मे निश्चय कर लेता कि आगे मै कभी शराब छुऊगा तक नही। लेकिन उसके दोस्त उसे ढूढते हुए घर पहुचते और जबरदस्ती पकड़ ले जाते। वह पीने से मना करता और कभी-कभी उनके साथ जाने से भी इनकार करता, लेकिन उसके दुर्बल मन पर वे विजयी होते। इसलिए अनिच्छा से ही उसे अपनी मित्र-मडली का साथ देना पडता। इस प्रकार वह व्यसनो को छोडना चाहता था परन्तु व्यसन उसे छोडते न थे !

एक दिन प्रात काल ही वह अपनी कार ले थियेटर का निर्माण देखने गया। वहा पर उसे मालूम हुआ, कोई त्योहार होने के कारण मजदूरो को छुट्टी दी गई है। उसने इधर-उधर घूमकर देखा। थियेटर का बहुत काम शेष रह गया है। निर्माण-सबन्धी काफी सामग्री खरीदनी है। मजदूरी इत्यादि के लिए भी काफी बड़ी रकम चुकानी है। इजीनियर ने

थियेटर के निर्माण के लिए व्यय का जो अनुमान लगाया था उतनी पूरी रकम सुहासिनी ने उसके हाथ मे दी है। लेकिन अभी उसका हाथ खाली हो गया है। इस कल्पना-मात्र से वह घबडा उठा। उसका सारा नशा उतर गया।

राजाराम की अतरात्मा उसे धिक्कारने लगी। अपने इस विश्वासघात पर उसे ग्लानि हुई। वह सोचने लगा—मै क्या कर रहा हू? मेरा लक्ष्य क्या है? मेरे ये दोस्त जो आज मुझे काटो मे घसीट रहे हैं, क्या वे कल मेरी मदद करेगे? कभी नही, कभी नही, तो ये मेरे पीछे क्यो पड़े हुऐ है?

सोचते-सोचते वह चौक उठा। वे लोग अपनी आदतो से मजबूर है। उनकी ये आदते आज की नही। शायद जन्म-घुट्टी से ही उन्हे लग गई हो। किन्तु मै? मै उनका साथ क्यो दू? मेरे न जाने से क्या होता है?

यह धन किसका है? विश्वास का है। मुझे इसका उपयोग करने का अधिकार किस बूते पर दिया है? विश्वास और ईमान पर ही तो है, मै क्या कर रहा हूं? अपने भोगों मे और व्यसनो मे उसे पानी की तरह बहा रहा हू। सुहासिनी को मालूम हो जाएगा तो क्या समझेगी? वह बुरा भले ही न समझे, लेकिन मेरा अपव्यय करना उचित है? सुहासिनी कौन? मामा की लड़की तो है। उस मामा की लड़की जिसने मुझे प्रेम से अपने घर बुलाया, पढाया, लिखाया, बड़ा किया और न मालूम क्या-क्या करना चाहते थे। वे मेरा उद्धार

करना चाहते थे। मै उस योग्य नही था। ऐसे दयालु और प्रेमी मामा की सतान के प्रति कृतघ्नता दिखाना मानवता कहलाएगी ? मै हर तरह से इस परिवार के पतन की नीव खोद रहा हू। यही मामा और मुझमे अतर है।

ठीक ही कहा है, बड़े लोगो का मन भी बड़ा होता है और छोटे लोगो का छोटा। अच्छाई और बुराई के बीच जो अतर है, वही अतर मै अब देख रहा हू।

मैं इस प्रकार कहा बहा जा रहा हू ? इसका जिम्मेवार कौन है ? समाज अथवा धन ? अधिकार है या स्वतत्रता ? चरित्रहीनता है या चित्त की चपलता ?

इन घटनाओ का सिहावलोकन करते राजाराम को अपने जीवन पर विरक्ति पैदा हुई। इससे बचने का उसे कोई उपाय नही सूझा। आखिर उसने यह सब छोडकर भाग जाने का संकल्प किया। लेकिन इस बार उसकी अन्तरात्मा ने उसे रोका। उसी समय उसे ममतामयी माता की याद आई। इसके साथ ही उसे अपने वचन का स्मरण भी आया।

राजाराम को अपने इस विचार पर हसी आई। उसने निश्चय किया कि वह अपनी गलती सुहासिनी के सामने रखेगा और उससे क्षमा मागेगा। क्या सुहासिनी क्षमा नही करेगी ? जीवन मे गलतियो का होना स्वाभाविक है। उन्हे पहचानकर अपने को सुधारना ही आदमी का कर्तव्य है। कायर बनकर भाग जाना मूर्खता है। मै कुछ करके दिखाऊगा। एक उत्तम

मानव बनने का प्रयत्न करूगा। मै अपनी सारी जायदाद बेचकर ही सही, थियेटर का निर्माण पूरा करूगा।

अपने सकल्प की पूर्ति के लिए दूसरे ही दिन राजाराम रामापुर पहुचा। अपनी जमीन-जायदाद, घर इत्यादि बेच-बाचकर विजयवाडा लौटा। जमीन बेचने से प्राप्त चेक भुनाकर रुपये गिन ही रहा था कि किसी गिरहकट ने एक रुपये का नोट दिखाकर राजाराम को टोका कि उसका रुपया नीचे गिर गया है, ले ले। ज्योही राजाराम झुककर रुपया लेने लगा त्योही वह गिरहकट रुपयोसहित भाग खडा हुआ। राजाराम ने आखे फाड़-फाडकर देखा, रुपयो के वडल गायव थे। घबराहट के साथ इधर-उधर झाका और चिल्ला उठा। उसकी चिल्लाहट सुनकर राब इकट्ठे हुए, लेकिन तब तक चोर चंपत हो गया।

राजाराम का दिल तेजी के साथ धडकने लगा। बडे भारी कदम उठाते बाहर आया। पागल की तरह इधर-उधर ढूढ़ने लगा कि कही चोर का पता लग जाए। यह राजाराम के जीवन मे पहला मौका था जबकि उसने रुपये खोए। पहले उसने सोचा कि पुलिस मे रिपोर्ट देने से शायद रुपये मिल जाए। लोगो ने भी उसकी यह दशा देख राहानुभूति जताई और पुलिस मे रपट देने की सलाह दी।

व्याकुल हृदय को ले पैर घसीटते थाने की ओर जाने लगा। इतने मे होटल से रेडियो का सगीत सुनाई दिया—

ज़िन्दगी की राह

"देख तेरे संसार की हालत क्या हो गई भगवान, कितना बदल गया इन्सान..."

२१

मनुष्य जीवन के उन्नत शिखर पर पहुचकर गर्व के साथ एक बार चतुर्दिक् अवलोकन करना चाहता है। इसमे वह तृप्ति और आनद की कामना करता है। उस समय यह भूल जाता है कि शिखर पर उसका पैर फिसल गया तो गहरी खाइयो मे वह उस तरह गिर जाएगा कि वह फिर भूगर्भ-शास्त्रियो के अनुसधान की वस्तु बन जाएगा। यह जानते हुए भी ,मनुष्य उस चोटी पर चढना चाहता है और अपने 'अह' को प्रकट करना चाहता है। लेकिन विरले ही उसमे सफल हो पाते है।

राजाराम ने अपने जीवन के उच्चतम शिखर पर चढना चाहा, लेकिन उसने यह नही देखा कि उसपर चढने की सामर्थ्य और अनुभव तथा विवेकशीलता उसमे है कि नही। वह अपने लक्ष्य पर पहुच ही नही पाया, बीच मे ही एक प्रचण्ड झोके ने उसे ऐसे गिराया कि मुह के बल खाई मे गिर पड़ा।

राजाराम को अपने रुपयो के खो जाने से उतना दु.ख नही हुआ जितना कि थियेटर के निर्माण के रुक जाने से।

उसके हृदय मे ज्वालामुखी फूट रहे थे। आधिया उठ रही थी। लडखडाते, अपने भाग्य को कोसते न मालूम कब वह सुहासिनी के सामने आकर खडा हो गया। सुहासिनी ने राजाराम का यह रूप कभी नही देखा था। उसने ऐसा अनुभव किया कि ससार का समस्त शोक मूर्ति-भूत हो राजाराम के रूप मे वहा खड़ा हो। राजाराम का मुख-मडल लज्जा, ग्लानि, वेदना और भय का रगमच बनकर एकसाथ विभिन्न भावो का प्रदर्शन कर रहा था।

सुहासिनी ने विस्मय के साथ राजाराम को देखा और देखती ही रही। सुहासिनी की सहानुभूति पाकर राजाराम का हृदय थोडा-सा हल्का हुआ। उसने सारी कथा सुनाई। उसने सोचा कि सुहासिनी आग-बबूला हो उठेगी और तीव्र शब्दो मे उसकी भर्त्सना करेगी। लेकिन उसके प्रशान्त वदन और शीतल वचनो ने राजाराम को और भी व्यथित बनाया। राजाराम बहुत देर तक वहा रह नही सका। अपने सजल नेत्र पोछते हुए वह अपने कमरे मे चला गया। शोकातुर-हो वह तकिये मे मुह छिपाकर रोता रहा।

सुहासिनी शिला-प्रतिमा की भाति निश्चेष्ट बैठी रही। उसके हृदय मे नाना प्रकार की भाव-तरगे हिल्लोल करने लगी।

यह जीवन भी कैसा विचित्र है। सुख-दुःखों का चक्र कितने वेग से घूमता है और कैसे अपनी दिशा बदलता है,

कोई नही जानता। मनुष्य कभी-कभी उस चक्र की धुरी में पड़कर ऐसा पिस जाता है कि उसका नामोनिशान तक नही रहता।

मानव अपने ऐश्वर्य के कारण जहा आदर का पात्र हो जाता है वही सपत्ति के अभाव मे तिरस्कृत भी होता है। सुख-दु ख मानव-जीवन रूपी चक्र के दो पहिये है। ये गतिशील होने के कारण दिन-रात की तरह बारी-बारी से परिक्रमा किया करते है। इसी सिद्धात के आधार पर सम्राट भिखारी होता है और भिखारी चक्रवर्ती। परिस्थितियो के विषम रूप धारण करने पर ये परिवर्तन हुआ करते है। ये अवश्यभावी है, ऐसा तो नही कह सकते किन्तु इतना निश्चित है कि कब क्या होता है, कोई नही जानता।

सपत्ति कभी-कभी अपने अज्ञान और अविवेक के कारण हवा मे रखे कपूर की तरह उड जाती है। तो कभी-कभी प्राकृतिक प्रकोप, प्रवचना इत्यादि अन्यान्य कारणों से।

सोचते-सोचते सुहासिनी का दिमाग गरम होने लगा। उसने थियेटर बनवाने का सकल्प ही क्यो किया? उस सपत्ति को बैंक मे जमाकर उससे प्राप्त ब्याज पर अपने दिन काटती तो क्या ही अच्छा होता। लेकिन जब मनुष्य के पतन का अवसर आता है तो शायद बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है।

फूफी और राजाराम पर बडी-बड़ी आशाए रखी, उनपर विश्वास किया। क्या उसीका यह दुष्परिणाम है? शकरन

नायर आज होते तो ऐसा मौका न आता। छि., मै कैसी कल्पना कर रही हू ? पिताजी ही होते तो ? लेकिन हितैषियो का इस ससार मे सदा बना रहना सभव है ? मै भी तो सदैव के लिए अपना आसन यहां सुरक्षित नही रख सकती। इस नश्वरता को जानते हुए भी मानव धोखा, प्रवचना, दगा इत्यादि क्यो करता है ? वित्ते-भर का पेट भरने के लिए ? कैसा पतन है मानव का ? उत्कर्ष और पतन मानव-जीवन के दो सिरे है। उत्कर्ष मे वह देवता भी बनता है, किन्तु पतन मे वह पशु से भी नीच होता है।

व्यापार भी एक दाव है जिसमे हार-जीत सभव है। सुख-दु.ख धूप-छाह के समान है। सुख-दु.ख-समन्वित जीवन ही आनददायक है। मानव-जीवन रग-बिरगे इन्द्रधनुप की भाति विभिन्न कोणों से पूर्ण है।

जीवन का स्वरूप और उसकी गति कब और कैसे बदलती है, कौन जाने ? उसे जानने और समझने का अवकाश और ज्ञान किसमें है ? अपने जीवन की दिशा समझने का ज्ञान होता तो मानव का जीवन परोसी हुई पत्तल होता। जीवन भी नित्य नवीन होता है। ऐसा न होता तो निश्चित लीक पर चलकर ही वह अपने लक्ष्य तक पहुच जाता। लेकिन जीवन की गति व दिशाक्रम बड़े विचित्र होते है। इस वैविध्यपूर्ण जीवन के सबन्ध मे निश्चित परिभाषा देना कठिन है। परिस्थितियो के साथ समझौता करते हुए उन्हें अपने

अनुकूल बनाने का प्रयत्न करना मानव का कर्तव्य है। कभी-कभी ये परिस्थितिया विपरीत भी हो जाती है।

दो हृदय परस्पर मिलते है। एक-दूसरे से चिपक जाते है। वे ही हृदय कभी जोर से टकराकर चूर-चूर हो जाते है। शान्ति और सघर्ष जीवन के दो अभिन्न तत्त्व है। दिवा-रात्रि जैसे काल के अभिन्न अग है, वैसे ही मानव-जीवन इन तत्त्वो मे प्रगति करता जाता है। संघर्ष के कारण ही मानव अनुभव और ज्ञान प्राप्त करता है, वरना मानव-जीवन भी मृतप्राय हो जाता है। ये पक्ष शायद जीवन के लिए आवश्यक हो।

राजाराम ने धन का दुरुपयोग किया है। यह सही है। किन्तु उसने अपना धन भी खो दिया है। इसका उसे बडा दुःख है। वह पश्चात्ताप की अग्नि मे झुलस रहा है। ऐसी स्थिति मे उसे कुछ कहना अच्छा नही होगा। कहने से भी वापस मिलने की सभावना नही। उलटे वह और न कुछ कर बैठे।

धन तो स्वाहा हो गया। अब व्यक्ति को खोना उचित नही। व्यक्ति धन कमा सकता है लेकिन धन व्यक्ति नही हो सकता। धन से भी एक व्यक्ति के सुधर जाने का मूल्य बहुत ज्यादा होता है।

राजाराम का सकल्प अच्छा था। वह ईमानदार भी है। बुरी सगति मे पडकर गलत रास्ते पर चला। यही कारण है वह दिन-प्रतिदिन गिरता गया। अब शायद यह दुर्घटना उसे

सचेत करने के लिए हुई है। ऐसी दुर्घटनाए मानव-जीवन मे अकसर हुआ करती है। ऐसे बहुत कम लोग है जो उनसे सबक सीखते हो। लेकिन जो व्यक्ति उनसे कुछ ग्रहण करता है, वह अपनी जिन्दगी को सुधार सकता है। ऐसी दुर्घटनाओ मे केवल व्यक्ति-मात्र का ही दोष नही होता, परिस्थितियो और वातावरण का भी होता है। व्यक्ति पर परिस्थितिया प्रभाव डाल भी सकती है और व्यक्ति उन परिस्थितियो पर काबू भी कर सकता है। उचितानुचित का निर्णय विवेकशील व्यक्ति ही कर पाता है।

इस दुर्घटना से थियेटर का काम रुक गया। निर्माण-सबन्धी सामग्री का मूल्य चुकाने मे जो बाकी रह गया था, वे लोग भी तकाजा करने लगे। अब थियेटर का काम पूरा करना कठिन ही नही बल्कि असभव था। कर्जदारो से पिड छुड़ाने के लिए आखिर थियेटर बेचने का निर्णय हुआ। दीनदयाल और सीतालक्ष्मी से भी सुहासिनी ने परामर्श लिया। उसके दोनो पक्षों पर समुचित चर्चा के बाद ही उपर्युक्त निर्णय हुआ।

२२

सरला की मनोवेदना तीव्र रूप धारण करती गई। गर्भ-स्थित शिशु की चिन्ता उसे खाए जा रही थी। अडोस-पडोस की महिलाओ से वह बचकर रहना चाहती थी लेकिन बच नही सकी। अवकाश के समय वे सब सरला को घेर लेती और उससे तरह-तरह के सवाल करती। सरला उनको उत्तर देने में सकोच मे पड जाती। उन प्रश्नो मे उसके विवाह, उसके पति की नौकरी, मायके की बाते मुख्य थी। बडी-बूढी औरते जब उससे पूछती कि तुम्हारा मगलसूत्र दिखाई नही देता, क्या बात है, तो सरला पशोपेश मे पड जाती। लेकिन वहा पर उपस्थित महिलाए व्यग्य के साथ यह कहकर उस प्रश्न को टाल देती कि आजकल पढी-लिखी औरते मगलसूत्र कहा पहनती है? यह कहते वे खिलखिलाकर हस पड़ती। सरला के हृदय पर व्यग्य के ये बाण ऐसे चुभते कि वह तिलमिलाकर रह जाती। आए दिन इस प्रकार की कोई न कोई समस्या उपस्थित होती और सरला के मर्म पर आघात होता।

मानव क्षणिक सुख के लोभ मे पड़कर जो भूल कर बैठता है, उसका परिणाम इतना भयकर होता है, इसकी कल्पना तक सरला ने कभी नही की थी। वह प्रेम के उन्माद में अपने पर नियन्त्रण खो चुकी थी। उसे नही मालूम था कि यह

उफान कुछ ही दिनो मे थम जाएगा और उसे बड़ी भारी क्षति पहुचाएगा ।

अनुभव जीवन के लिए अत्यत आवश्यक है। अनुभवहीन ज्ञान जीवन के लिए उतना उपयोगी नही। ज्ञान से जब अनुभव का जन्म होता है तब व्यक्ति अपने जीवन को सुखमय बना सकता है। अनुभव और ज्ञान के साथ क्रिया का भी समन्वय हो तो सोने मे सुगन्ध का काम हो जाता है। उसके अभाव मे मानव-जीवन अनेक प्रकार की समस्याओ का केन्द्र बन जाता है।

वेदना, पीडा, ग्लानि इत्यादि ने सरला के हृदय पर डेरा डाल दिया। वह उद्विग्न थी, विकली थी। मानसिक वेदना उसे जलाती और शुष्क बनाती गई। वह एक ऐसी रोगिणी हो गई थी जिसका इलाज केवल विवाह था।

सुरेश विवाह के प्रस्ताव को टालता ही गया। वह पहले की भाति सरला के सामने बैठकर घटो अपने दिल के गुब्बारों को प्रकट नही करता था। वह केवल अपने प्रेम का अभिनय करता। लेकिन समस्या की तीव्रता का अनुभव नही करता और न उसे सुलझाने का मार्ग ही ढूढता। मार्ग सुझाने पर भी उसपर चलने का वह प्रयत्न नही करता।

शका सभी बीमारियो की जड़ होती है। शका के कारण ही व्यक्ति हत्या करता है, अपने से अपनो को दूर रखता है और दूसरे व्यक्ति की छाया-मात्र से घृणा करता है। शका एक ऐसी

भावना है जो एक बार किसीके दिल मे घर कर जाती है तो उसकी जडे इतनी मजबूत जम जाती है कि उन्हे उखाड फेकना सभव नही है।

सुरेश के प्रति सरला के मन मे शका ने अपना शासन जमाया। उसके व्यवहार उसकी पुष्टि करते गए। उसके उत्तर और भी उसे दृढ बनाते गए। आज तक सरला के मन म इस समस्या से छुटकारा पाने का जो प्रबल विश्वास था वह हिल गया। उसकी आशा भी जाती रही। इसलिए दिन पर दिन वह हताश होती गई।

सरला जब कभी अपने हृदय के उद्‌गार सुरेश के सामने व्यक्त करती तो सुरेश या तो अनसुनी करता या सुनकर टाल देता। सुरेश मे अचानक इस परिवर्तन को देख सरला सिहर उठी। उसने यह सोचकर अपनी प्रेमलता को बढाया दिया कि वह एक मजबूत वृक्ष के सहारे चोटी तक पहुचेगी, पल्लवित एव पुष्पित हो अत मे फल देगी। लेकिन अब उसे लगा कि उसकी लता मे जब कच्चा फल लगा है, तभी उसे समूल उखाड-फेकने का प्रयत्न हो रहा है। जब कभी यह विचार उसके मन मे आता तो सरला बावली हो अपना सिर पीटने लगती।

इधर सरला की वेदना असहनीय होती गई, उधर सुरेश का सरला के प्रति आकर्षण घटता गया। सरला पहले काफी सुन्दर थी, चचल थी, लावण्यमयी थी। अपने मधुर वचनों के

द्वारा सुरेश को अपनी ओर आकृष्ट किए रखती थी। सुरेश भी आत्मिक सौन्दर्य का पुजारी न था। शारीरिक सौन्दर्य पर उसकी निगाहे अधिक टिकती थी। इसलिए गर्भवती सरला को वह पहले की भाति प्यार नही दे सका। फिर भी सुरेश के हृदय मे अतर्वाहिनी की भांति शीतल प्रेम-धारा प्रवाहित हो रही थी, किन्तु इस सकट के समय उसकी अंतस्थली मे उस धारा को रोकता हुआ-सा भय का बाध बना हुआ था। अतः उसके लिए वह सिरदर्द का विषय बन गई।

नारी जब माता बन जाती है, उस समय उसमे मातृत्व की भावना भी फूल मे स्थित सुगन्ध की भाति जागृत होती है। किन्तु पुरुष पिता होकर भी पितृत्व भार को वहन नही करता। इस जिम्मेदारी से वह मुह मोडना चाहता है। यही पर दोनो मे सघर्ष भी होता है। पुरुप की इस विच्छृखलता पर ही नारी खीझ उठती है।

सुरेश पितृत्व की श्रेणी में आ गया। लेकिन उस जिम्मेदारी को ग्रहण करने से वह बचना चाहता है। पुरुष बचकर भाग भी जाए, लेकिन नारी अपने मातृत्व के बोझ को गर्भ मे धारण किए बच नही सकती। वह जहां भी जाएगी, गर्भ भी उसका साथ देगा।

सुरेश सरला को छोड़ भले ही भाग जाए, उससे विवाह करने से इन्कार भी करे, फिर भी उसकी कुसगति के फल— मास-पिड को अपने गर्भ मे धारण किए अपनी सहनशीलता

का परिचय सरला देती ही रहेगी।

२३

"आप सोचते कुछ है, और होता कुछ है।"

परिस्थितिया साथ देती है तो मनुष्य ऊंचे शिखर पर पहुचकर छाती फुलाए सतोष की सास लेता है। परिस्थितिया साथ नही देती तो गहन गड्ढे मे गिरकर आहे भरता है। किसीमे धन के कारण ये उत्थान-पतन देखे जाते है तो किसी मे मानसिक क्लेश के कारण। चाहे जो भी हो मानव को सताने मे ये दोनो सफल हो जाते है। इनसे प्राप्त सताप मनुष्य को रुग्ण बनाता है और कभी-कभी उसके जीवन की गति बदलता है। इसलिए यह जानना कठिन है कि किसके जीवन मे कैसा मोड आता है और उसका प्रभाव कैसा जबरदस्त होता है; कुछ कह सकना भी कठिन है।

सुहासिनी की जमीन व जायदाद के स्वाहा हो जाने के कारण उसका प्रभाव सीतालक्ष्मी पर ऐसा पडा कि वह मानसिक सतुलन खोकर बीमार पडी। क्रमश. उसमे सन्निपात के लक्षण दिखाई देने लगे। घर-भर के लोगो के लिए यह चिन्ता का कारण बना।

डा० राजू प्रतिदिन आते और सीतालक्ष्मी को दवा देते।

सुहासिनी इन घटनाओ के बीच भी बिना विचलित हुए अपनी फूफी की सेवा करती रही। राजाराम सदा अपनी मा के पास बैठे आसू बहाता रहता। वह मन ही मन सोचता कि उसने सुहासिनी के प्रति जो अन्याय किया है, उसीका परिणाम उसकी माता की बीमारी है। यह अवाछित भय उसे और भी विकल बनाने लगा। अब उन लोगो के पास इतना धन न था, जिससे कि घर बैठे-बैठे अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति कर सके।

परिवार का खर्च भी काफी बैठता था। सीतालक्ष्मी की बीमारी, सरला की पढाई और कार का खर्च इतना हो जाता था कि उसे सभालने मे कठिनाई का अनुभव होने लगा। सीतालक्ष्मी की चिन्ता का यह भी एक कारण था। उसे इस बात का बडा दुख था कि उसीके पुत्र ने सुहासिनी की सारी जायदाद डुबो दी है। सुहासिनी की मदद करना तो दूर रहा, उलटे ऐसी क्षति पहुचाई जिसे कभी पूरा नही किया जा सकता। अपनी भी जायदाद होती तो कुछ हाथ बटाया जा सकता था, लेकिन वह भी स्वाहा हो गई। सब तरह से वह परिवार पगु बन गया था।

दीनदयाल जब-तब आकर सुहासिनी को धीरज बधाते थे। परिस्थिति को और भी विषम होते देख उन्होने सुझाया कि राजाराम को कोई न कोई काम करना ही चाहिए। राजाराम बड़ी खुशी से तैयार हुआ। दीनदयाल ने एक

कारखाने मे उसे एक सौ पचास रुपये मासिक वेतन पर नौकरी दिलवाई ।

राजाराम दिन-भर कारखाने मे काम करता और रात को घर लौटता । एक सौ पचास रुपयो से काम चलता न देखकर कार बेच दी गई और बगले के पिछवाडे का हिस्सा और गैरेज किराए पर दे दिया गया । इससे एक सौ रुपये की अतिरिक्त आमदनी होती । यह उस परिवार के लिए डूबते हुए को तिनके का सहारा-सा हो गया ।

डाक्टर का खर्च प्रतिमास इतना बैठता कि उसको चुकाने मे बडी कठिनाई होती । डाक्टर बराबर आते रहे और परिवार के लोगो से काफी परिचित होते गए । इसलिए कभी-कभी वे इस परिवार के संबन्ध मे दीनदयाल से भी चर्चा करते और अपनी सहानुभूति जताते ।

राजाराम की कमाई की रोटी तोडना सुहासिनी की आत्मा को क्लेश पहुचाने लगा । बहुत विचार करने के उपरात साहस करके उसने दीनदयाल के सामने नौकरी करने की इच्छा प्रकट की । दीनदयाल ने डाक्टर के घर मे उनकी सौतेली मा के बच्चो को पढाने का काम दिलवा दिया । मासिक सौ रुपये मिल जाते थे । तीन बच्चो को पढाना था । बच्चे भी सुहासिनी से इस प्रकार हिलमिल गए कि उसके आने मे जरा देरी हुई तो ड्योढी पर उसकी प्रतीक्षा करते खडे रहते ।

सुहासिनी आज तक कभी अकेली बाहर नही निकली ।

यदि कभी किसी जरूरी काम पर निकलती तो कार ही मे। आजकल अकेली रिक्शे पर बैठ ट्यूशन करने जाते देख उस गली की औरतो की आखे बरस पडती। बडे वृद्ध और पुरुप भी उसके परिवार का हाल देखकर चिन्ताकुल हो जाते। इन विपम परिस्थितियो मे भी सुहासिनी गभीर ही रहती।

किसका भविष्य कैसा है कौन जाने ?

हस्त सामुद्रिक और जन्मकुण्डली देख ज्योतिष शास्त्री भले ही व्यक्ति के भविष्य का निर्णय करे, होनहार होकर ही रहता है। जैसे रेखाए हथेली को एक सिरे से दूसरे सिरे तक नापते हुए आयु, शिक्षा, सपत्ति, सतान और यश की सीमाओ को निर्धारित करती है, वैसे ही व्यक्ति के जीवन मे घटित होनेवाली घटनाए जिन्दगी को राह का निर्देश करती है।

जिन्दगी की राह कौन-सी है, लकीर खीचकर बताई नही जा सकती। कोई भी यह नही जानता कि उसकी जिन्दगी का आरभ कैसे हुआ, विकास कैसे होता जा रहा है और अत कैसे होगा ? पहले ही जिन्दगी की राह निर्देशित कर उसपर चलने का प्रयास करना मूर्खता है। यह राह टेढी-मेढी होती हुई कब, किस दिशा की ओर मुडती है और अत मे जाकर कहा लय होती है, बड़े से बडे मेधावियो के लिए भी दुर्बोध है।

जिन्दगी एक धारा के समान है। वह धारा समतल भूमि को जिधर पाती है, उसी ओर अपनी दिशा को बदलकर वेग के साथ आगे बढ़ती है। यदि उसको निश्चित दिशा की ओर

मोडने का प्रयास किया जाए तो उस प्रदेश को भी डुबाते बहा ले जाए। हा, उस प्रवाह के कुछ अश को बाध के द्वारा कही रोकने का प्रयत्न अवश्य किया जा सकता है। किन्तु यह भी खतरे मे खाली नही।

२४

सन्ध्या का समय।

ठडी समुद्री हवा चल रही थी। सरला आरामकुर्सी पर बैठे विचारमग्न थी। अखबारवाले ने खिडकी से पेपर फेंका। इस आवाज ने सरला का ध्यान भग किया। उठकर 'मेल' हाथ मे लिया। समाचार पढने लगी। पढते-पढते वह एक जगह ठिठक गई। वह एक सनसनीखेज खबर थी। समाचार यों था .

"कल शाम को एक दंपति ने अपने पाच बच्चो के साथ कुएं मे कूदकर आत्महत्या कर ली। आज सुबह उनकी लाशे कुए से निकाली गई, और शव-परीक्षा के लिए भेज दी गई है।

बताया जाता है कि उस परिवार ने केवल अपनी मान-रक्षा के लिए ही यह साहस कृत्य किया है। उस परिवार का विवरण इस प्रकार है :

त्यागराजन नामक एक व्यक्ति 'वाशरमेन पैट' मे एक किराये के घर मे रहता था। वह एक प्राइवेट कपनी का कर्मचारी था। उसकी आमदनी अपने परिवार के खर्च के लिए काफी नही थी। उसने इधर-उधर कर्ज लिया था। इसके अतिरिक्त अपने एक दिली-दोस्त से इम शर्त पर एक सो रुपया उधार लिया था कि एक मास के अन्दर वह चुका देगा। किन्तु वह समय पर नही दे सका। इससे वह सदा चिन्तित रहता था।

त्यागराजन हृद से ज्यादा भावुक और स्वाभिमानी था। अपने दोस्त के सामने वह लज्जा का अनुभव करता था। कभी-कभी कही अचानक मुलाकात होती तो वह बचकर निकलने का प्रयत्न करता। उसके दोस्त के लिए यह सन्देह का कारण बना। उसने अपनी आवश्यकता के लिए एक-दो बार रुपया मागा। जब नही मिला तो बराबर तकाजा करता गया। त्यागराजन ग्लानि से गडता जाता और बहुत दु.खी होता। दोस्त ने रुपये न पाकर खरी-खोटी सुनाई। एक-दो बार आवेश मे आकर कुछ ऐसी बाते कही जो त्यागराजन के मर्म पर जा लगी।

इसी बीच त्यागराजन की नौकरी भी छूट गई। खाने का खर्च चलाना भी मुश्किल था। ऊपर से कर्ज का भार। उसका मन विकल हो गया। अब अपनी जीविका का कोई सहारा न पाकर उसने आत्महत्या करने का निश्चय किया।

अपनी धर्मपत्नी से अपनी इच्छा प्रकट की। वह बड़ी साध्वी थी। उसने सलाह दी कि आपको छोड हम रहना नही चाहते। हमारा भविष्य और भी अधकारमय हो जाएगा। हम भी आपका साथ देने के लिए तैयार है। पल-भर मे पति-पत्नी ने निश्चय किया। अपने पाचो बच्चो को लिए वे मद्रास से चेगलपेट जानेवाले रास्ते मे पड़नेवाले एक बडे कुए के पास पहुचे। पहले उस दपति ने अपने दिल को पत्थर बनाकर अपने बच्चों को कुए मे ढकेल दिया और फिर आप एक-दूसरे का हाथ पकडकर उसमे कूद पडे। त्यागराजन ग्रेजुएट था।"

यह समाचार पढते ही सरला का कोमल हृदय मक्खन की भाति पिघल गया। वह सोचने लगी कि मनुष्य की सारी समस्याओ का चिरतन समाधान शायद मृत्यु है, मृत्यु से प्राणी चिर शान्ति प्राप्त करता है। अपना-पराया, समाज और ससार उसे डरा-धमका नही सकते। वह मानव-निर्मित समस्त कृत्रिम बधनो से सदा के लिए विमुक्त होता है। जो इस प्रकार की शाश्वत स्वतन्त्रता चाहते है, सभवत. वे ही मृत्यु का स्वेच्छापूर्वक स्वागत करते है।

यह मृत्यु भी कैसी बला है। कुछ लोग जीने के लिए तडपते हुए दम तोडते है। कुछ लोग अप्रत्याशित घटनाओ के कारण जान से हाथ धो बैठते है, तो कुछ लोग स्वेच्छा से। इस प्रकार मृत्यु का मार्ग भिन्न होने पर भी परिणाम एक ही है।

सरला की विचार-परपरा चलती ही रही। बूटो की आवाज ने उसे जाग्रत किया। सुरेश हाफता हुआ आया और सरला के सामने बैठ गया। उसको हाफते देख सरला ने पूछा—"अजी क्या बात है ? धीरे से आते ?"

"नही सरला, घर से तार आया है।"

सरला सन्न रह गई। तड़पते हुए पूछा—"कहा से ? बात क्या है ?"

"घर से, पिताजी ने घर बुलाया है।"

"कारण क्या है ? ऐसी जल्दी क्या आ पड़ी है ?"

"मै क्या जानू ? आज ही चल देने का आदेश है।"

"बिना कारण के ? मै भी तो जानू, कारण क्या है ?"

"यह सब लिखा होता तो मै क्या नही बताता ?"

"पुरुषो पर विश्वास कौन करे ?"

गम्भीर होकर तार का फार्म सरला के निकट फेकते हुए उसने कहा—"विश्वास नही हो तो पढ लो।"

सरला ने उसे हाथ मे लेकर पढा। उसका मन अस्थिर होने लगा। उसके हृदय के किसी कोने मे संदेह भी जाग उठा। तुरन्त पूछ बैठी—"यह तार तुम्हारा बनाया हुआ तो नही है ?"

"तार बनाकर क्या पाऊगा ?"

"क्या जाने ? किसके दिल मे क्या बैठा है ?"

सुरेश तड़पकर बोला—"मुझपर शका करती हो ?"

"कारण साफ दिखाई दे रहा है न !"

नरम होते हुए सुरेश बोला—"सरला मै सच बतला रहा हू । मैं इसकी बाबत कुछ नही जानता । शायद हो सकता है, मेरी माता बीमार हो । उसे रक्त-चाप की शिकायत है बहुत दिनो से । अब उसका प्रकोप हुआ हो, वरना पिताजी मुझे कभी तार नही देते। मै जल्दी ही लौटूगा । अधीर मत बनो !"

"मुझे इस हालत मे छोड़कर जाओगे ?"

सुरेश ने सरला की ठोड़ी पकड़े प्यार जताते हुए कहा—"पगली, घबडाती क्यो हो ? यह सुरेश तुम्हारा है । इसे कोई छीन नही ले जाएगा ।"

"क्या पता, कोई अपने जाल मे फसावे तो ?"

"औरतो का स्वभाव ही हमेशा आशका प्रकट करना होता है । सोचा था, तुम इसकी अपवाद हो । लेकिन मेरा विचार गलत निकला ।"

"न मालूम क्यो मेरी दाई आख फडक रही है । सुरेश, तुम आज मत जाओ । मेरी बात सुनो, कल मै खुशी-खुशी तुम्हे भेज दूगी । यकीन करो ।"

"नही सरला, कोई बहुत बडा कारण होगा । तभी तो पिताजी ने तार दिया है । मेरी माता मृत्यु-शय्या पर पड़ी हो, क्या पता ? अन्तिम समय भी पास न रहा तो वह बहुत दु:खी होगी । तुम बेफ़िक्र रहो, दो-चार दिन मे मै वापस लौटूगा ।

गाडी का समय भी होता जा रहा है। लो, ये सौ रुपये तुम अपने पास रखो। चलता हू।"

सरला से कुछ कहते न बना। जिद करने पर भी सुरेश रुक जाने के मूड मे नही है। इसलिए वह मौन धारण कर निश्चेष्ट कातर नेत्रो से सुरेश की आखो मे ताकती रही—उसकी आखो मे याचना थी, पार लगाने की कामना थी।

सुरेश ने सरला से विदा ले तेजी के साथ कदम बढाते चल पडा। सरला देखती रही। सुरेश के ओझल होते ही उसने गहरी सास ली।

सरला किवाड बदकर बिस्तर पर पड़ी रही। उसके मन-रूपी सागर मे असख्य भावना-रूपी तरगे उठ-उठकर किनारे से टकराकर चूर-चूर होने लगी।

२५

डाक्टर राजू के 'नर्सिग होम' में रोगी डाक्टर की प्रतीक्षा मे बेच पर बैठे हुए है। नर्सिग होम से लगा उनका घर भी है। डाक्टर घर के भीतर से कुछ मेहमानो के साथ फाटक तक आए। उनसे हाथ मिलाकर उन्हे विदा किया।

अतिथि कार पर जा बैठे। दूसरे ही क्षण वह तेजी से आगे बढी। डाक्टर राजू ज्योंही भीतर आए त्योंही विमाता

के चेहरे पर क्रोध टपकते देख ठिठक गए। राजू के निकट आते ही वह बिगड पडी

"आखिर तुमने हमारी नाक कटाकर ही दम लिया। हमने तुम्हारा क्या बिगाडा था, तुमने इस प्रकार बदला लिया।"

"अम्मा, तुम यह क्या कह रही हो ? मेरी इच्छा कोई चीज नही ?"

"तुम्हारी इच्छा ! पचास हजार रुपयो पर पानी फेर दिया। तुम उसका मूल्य नही जानते हो।"

"नो रुपये के लोभ मे पड़कर मै उस काली-कलूटी बनावटी लडकी से शादी करू ?"

"रग लेकर क्या करोगे ? चाटोगे ? गुण चाहिए।"

"मा ! केवल गुण ही प्रधान नही, शिक्षा भी होनी चाहिए।"

"तुम्हारी आशाओ का कोई अत भी तो है ? मै पढ़-लिखकर ही यह घर-गृहस्थी सभाल रही हू।"

"नही मा, मै चाहता हू कि लडकी गुणवती, रूपवती और सुशिक्षिता हो।"

"तो तुम्हे रुपये-पैसे की कोई जरूरत नही ? यही न ? तुम्हारी पढाई में बीस हजार खर्च हुए है। कम से कम उतना भी न ले, तो हमारी बिरादरी मे खानदान की प्रतिष्ठा मिट्टी मे मिल जाएगी।"

"मा, तुम गलत समझ रही हो। प्रतिष्ठा दहेज लेने मे

नही, बल्कि त्यागने मे है। लडकीवाले पिता दहेज न दे सकने के कारण तबाह हो रहे है। लड़कियो को अभिशाप मानकर आठ-आठ आंसू रोनेवाले इस समाज मे कितने ऐसे पिता है जो कि धन के अभाव मे अपनी लडकियो को लूले-लगडे, कुरूप और चरित्रहीनो के गले मे बाधकर सतोष की सास लेते है। कितनी ही होनहार लड़कियो का भविष्य इस तरह अधकारमय होता जा रहा है। उनमे हम किसी एक लडकी का ही नही उद्धार कर सके तो उस लड़की का पिता दिल खोलकर हमे आशीश देगा।"

"वाह ! तुम्ही एक लडकियों का उद्धार करने निकले। यह सब पागलपन छोड़ हमारी बात मानो।"

"अम्मा, इस विषय मे मै आपकी बात नही मान सकता। गुस्ताखी के लिए माफ करना।"

"छि:, मैने कभी नही सोचा था कि तुम इस प्रकार हमारा अपमान करोगे। घर आए हुए लडकीवाले बाप के सामने कोई यह कहता है कि मै शादी नहीं करूगा। शादी नही करोगे तो क्या सन्यासी बन जाओगे ?"

"मै यह नही कहता कि कभी भी शादी नही करूगा। मै यह कहता हू कि अपनी पसद से शादी करूगा।"

"माता को दु खी बनाकर तुम क्या सुख भोगोगे ? तुम्हे लिखा-पढाकर बड़ा किया। तुमपर कई आशाए रखी तो अपनी ही माता को यह जवाब देते तुम्हे शरम नही आती ?"

"शर्म किस बात की ? मैने कोई अपराध नही किया, जिसके लिए मै शर्म करू। अपनी इच्छा के विरुद्ध केवल आपको खुश करने के लिए शादी करके जीवनपर्यंत पश्चात्ताप करता रहूं ? क्या अपनी पसद की लडकी के साथ विवाह करके शान्ति के साथ जीवन-यापन करना आपसे देखा नही जाता ?"

"राजू, तुम अपनी सीमा पार करके बात करते हो। कोई भी माता-पिता अपनी सतान की बुराई नही चाहता। किसीको धन काटता नही। मै यही चाहती हू कि तुम ऐसी जगह शादी करो जहा से अधिक से अधिक दहेज मिलने की सभावना हो।

"मैंने कह दिया, इस विषय मे मै आपकी आज्ञा का पालन नही कर सकता। मुझे तग न कीजिए।" राजू ने दृढता से कहा।

"हम कुछ नही है, हमारी इच्छा कोई चीज नही, यही न ? तो याद रखो, इस सपत्ति से तुम्हे एक कौडी भी नही मिल सकती।"—विमाता बरस पडी।

"मुझे इसकी कोई चिन्ता नही।"

"छि, मै अपने जीते यह क्या सुन रही हू। मेरे सामने से हट जाओ। मै तुम्हारा मुह तक देखना नही चाहती। तुम्हारे पिता होते तो क्या ऐसा कह सकते थे ?"

"मा, मुझे दोष न दो। तुम्ही लोग इस घर मे आराम

से रहो। मैं कही चला जाऊगा''' ।"

"यही तुम्हारी पढाई का संस्कार है ?"

'नही तो, हर दिन का यह खटराग क्यों ?"

"मै अब घर-गृहस्थी सभाल नही पाती हू—बहू आए तो सारा भार उसे सौपकर राम-नाम जपते आराम करना चाहती हू।"

"तुम्हारे मन मे शान्ति कब होगी। लोगो को रुलाने और भडकाने मे तुम्हे मजा आता है। बहू आएगी तो उसे भी नोच-नोचकर खा डालोगी। इसीलिए जल्दी बहू चाहती हो।"

"राजू! बढ-बढकर बाते न करो। चले जाओ यहा से।"

"मै यही चाहता हू, इस नरक से जब तक बाहर निकल न जाऊ तब तक मुझे शान्ति ही नही है। यह सोचकर मैं यह सब सहन करता गया कि पिताजी नही है, और बाकी सब छोटे बच्चे है। वरना मै कभी का चला जाता।"—राजू यह कहकर तेजी के साथ आगे बढा।

किन्तु विमाता की पुकार सुनकर रुक गया।

राजू को जाते देख विमाता नरम पड़ गई। पिघलते हुए कहा—"राजू, मै सौतेली मा हू। इसीलिए मुझपर ये आरोप लगा रहे हो। मै जानती हूं दुनिया की नजरो मे मै तुम्हारी मा कभी नहीं हो सकती। लेकिन मै तुम्हारी दृष्टि में भी

माता नही बन सकी ।"—विमाता अपने आचल से आसू पोछने लगी ।

"अम्मा, तुम्ही सोचो, मै तुम्हारी किसी बात में खलल नही डालता हू, और न डालना चाहता हू । केवल मै यही तुम लोगो से चाहता हू कि मेरी शादी के मामलो मे जोर-जबर्दस्ती न करो ।"—राजू ने नम्र होकर कहा ।

विमाता ने सोचा कि अब रोब जमाने से काम नही चलने का है । प्रेम से ही परिस्थिति को काबू मे लाया जा सकता है । नरम पडते हुए बोली—"माता-पिता अपनी सतान की भलाई ही चाहते है, बेटा । तुम दहेज लो, या न लो, हमारा क्या जाता है !"

"विवाह एक पवित्र और स्नेह-बधन है । मा ! जीवन-भर शान्ति और सुख का अनुभव करना चाहे तो दपति मे आकर्षण हो और परस्पर एक-दूसरे के हृदयो को भली-भाति जाने और समझे । दोनो के मन तभी मिलते है जब एक-दूसरे को पसद आए, वरना जीवन जीवन न होकर नरक बनेगा । ऐसा न होकर शादी के बहाने युवती-युवको के विचारो के विरुद्ध शादी का सस्कार पूरा किया जाए तो वह बधन दोनो के गले मे फासी बनकर आखिर उनकी जान का ही खतरा बन जाएगा ।

"अब पुराने दिन लद गए है । आज लडकी भी अपनी इच्छा के विरुद्ध शादी नही करती, तुम तो लड़को को लेकर

शिकायत करती हो।"—राजू ने मौका पाकर समझाया।

राजू की बातो का प्रभाव विमाता पर पडा, ऐसा तो नही कह सकते, हा, वह शान्त जरूर हो गई। लेकिन अपने कथन का समर्थन करते बोली—"हम अपने बच्चो की भलाई की बात सोचते है, वे नही चाहते तो उसमे हमारा क्या दोष ? जिन्दगी मे कभी ऐसा मौका आएगा, उस वक्त जरूर हमारी बातो को याद कर पछताएगे। मै बूढी हो चली, आज नहीं तो कल, कल नही तो परसो मुझे अपनी अतिम तैयारी करनी है।"

विमाता ने विरक्ति जताई। राजू हसते हुए नर्सिग होम मे गए।

२६

दो बजे का समय था। कड़ी धूप थी। डाक्टर राजू किसी रोगी को देख अपनी कार मे घर लौट रहे थे। सुहासिनी एक पेड की छाया मे खडी रिक्शे का इतजार कर रही थी। आधे घटे से वही खड़ी रही। लेकिन उधर से कोई रिक्शा नही गुजरा। उसके पैर दुखने लगे। वह थक गई थी। रिक्शे के आने की कोई सभावना दिखाई नही दी। कोई चारा न था। एक-एक मिनट उसे एक घटे के समान प्रतीत

होने लगा। कोई साप्ताहिक पत्र वह अपने हाथ मे लाई थी। उसमे 'सयुक्तराष्ट्र सघ' पर कोई अच्छा लेख छपा था। आज वह बच्चों को पढाकर सुनाना चाहती थी। इसलिए समय काटने के विचार से उसके पन्ने उलटने लगी।

अपने समीप किसी कार के रुकने की आवाज़ सुनकर वह चौंक पडी। कार से उतरते हुए डाक्टर राजू हस रहे थे। सुहासिनी के निकट पहुचकर डाक्टर ने उसे कार पर चढने को कहा। सुहासिनी पहले सकुचाई। लेकिन वह विवश थी। पिछली सीट मे जा बैठी। कार हवा से बाते करने लगी। डाक्टर ने एक-दो बार कुछ कहा। सुहासिनी सुनती रही, लेकिन उसने कोई जवाब नही दिया।

घर पहुचते ही डाक्टर ने आकर दरवाजा खोला। सुहासिनी उतर पडी। शिष्टाचार के नाते उसने हसते हुए धन्यवाद दिया। डाक्टर उसकी ओर देखते हुए हसते रहे।

विमाता घर पर डाक्टर की प्रतीक्षा मे बैठी थी। प्रतिदिन राजू ठीक एक बजते ही मेज पर जा बैठते थे, और खाना परोसने का आदेश देते थे। आज राजू ने देखा, विमाता कुछ नाराज-सी लगी। उसने सोचा कि सुबह की घटना वह भूली नही, खाना मागने पर और भी बिगड उठेगी और सुहासिनी के सामने उसकी फजीहत होगी। यह सोचकर डाक्टर सीधे अपने कमरे मे गए, कपड़े बदलकर आराम करने लगे।

विमाता ने बडी देर तक इतजार किया। राजू को न

आते देख उसने बच्चों से बुला लाने को कहा। फिर भी राजू का साहस न हुआ कि जाकर मेज पर बैठे। इसके पूर्व जब कभी राजू के आने में देरी होती तो खुद विमाता उसके कमरे मे आकर बुलाती। आज उसके न बुलाते देख राजू की शका और भी प्रबल हो गई।

विमाता के दिल मे भी यह काटा बैठ गया कि राजू नाराज है। पर उसके खाना न खाते देख वह रह नही सकी। राजू के कमरे के पास पहुचकर उसने पूछा—"राजू, खाना नही खाओगे ?"

"मुझे भूख नही है, मा"—राजू बोला।

"भूख क्यो न होगी, ढाई बजने जा रहा है।"

राजू ने एक बार झूठ बोल दिया था, अब कैसे जाता, वह अपनी बात पर डटा रहा। विमाता हार मानकर चली गई।

विमाता चाहे रुपये-पैसे के मामले में कितनी ही लोभी हो, लेकिन वह माता का हृदय रखती थी। उसके भी चार बच्चे थे। आज तक उस घर मे कोई रूठकर बिना खाए लेटा नही रहा था। इसकी कल्पना-मात्र से उसकी आखे छलछला आई। उसे संदेह होने लगा कि शायद राजू सुहासिनी के घर खा आया हो। लेकिन वह यह भी जानती थी कि राजू पराये घर मे कभी नही खाता हे। फिर शका हुई, खाने न गया तो दो बजे तक क्या करता रहा। कभी भी वह इस वक्त तो बाहर

ही न जाता, यदि किसी जरूरी केस को देखने जाता भी तो एक बजे तक लौट आता था। लौटते वक्त भी वह किसीको अपनी कार मे बिठाकर घर न लाता। आज सुहासिनी को अपनी कार मे बिठाकर साथ लाया है। उनका हस-हसकर बात करना इत्यादि याद आते ही उसका दिल विद्रोह कर बैठा। उसके मन मे तरह-तरह की कल्पनाए उठी। दोनो जवानी मे है। जवानी क्या-क्या नही कराती। बड़े-बडे महात्मा-साधू भी फिसल जाते है।

उसका क्रोध बढता ही गया।

उसने फिर सोचा, यह क्रोध दिखाने का समय नही। इससे और भी बात बिगड जाएगी। अब सहनशीलता से ही काम लेना है। सोचते-सोचते उसके दिमाग मे एक अच्छी कल्पना चमक उठी। वह नकली प्रसन्नता को अपने चेहरे पर चमकाते बच्चो के कमरे मे पहुची। बच्चे सुहासिनी को चारो तरफ घेरकर तरह-तरह के सवाल पूछ रहे थे और वह बडे सब्र के साथ जवाब दे रही थी।

विमाता ने सुहासिनी के चेहरे को ध्यान से देखा, उसमे कोई विकार उसे दिखाई नही दिया। बल्कि गहरी प्रशातता और पवित्र स्नेह टपक रहा था, पल-भर के लिए वह अपनी इस कल्पना को मन मे लाने के कारण अपने-आप को कोसने लगी। लेकिन दूसरे ही क्षण राजू के न खाने पर उसका दिल छटपटाने लगा। इस विशालकाय व्यक्ति की मोटी तोद की

चर्बी की तहों मे यह ममता कहा रेंग रही थी, बता नही सकते, पर यह बेचैन थी, राजू को खिलाने के लिए वह हर उपाय को काम मे लाएगी ।

यह निश्चय कर सहमते हुए सुहासिनी से पूछा—"बेटी, राजू ने अभी तक खाना नही खाया है ।"

"क्यों मा ?" सुहासिनी ने जिज्ञासा से पूछा ।

"मालूम नही होता, कहता है कि भूख नही है ।"

"शायद कही खाया हो, पूछकर देखिए न ।"

"ना बेटी, कही नही खाता । अगर खाया होता तो बता देता, लेकिन झूठ नही बोलता ।"

"तो फिर बुलाइए न ।"

"मैने बुलाया, आता नही, तुम बुलाकर देखो तो ।" सकुचाते हुए विमाता बोली ।

सुहासिनी इस अप्रत्याशित प्रश्न पर चौक पडी । उसके मन में द्वन्द्व मचने लगा—उसका और डाक्टर का क्या संबन्ध है ? मुझे इसका पासा क्यों बना रही है ? यह कोई शतरज तो नही जिसमे जाकर अटक जाऊ ? डाक्टर से परिचय जरूर है, इस परिचय को लेकर वह उसे कैसे मनाएगी । नही माने तो ! अगर न बुलाऊ तो विमाता दु.खी होगी । उसका मुझ-पर यकीन है । कोशिश करके देखूगी । शायद मान जाएं । दो रूठे हुओ को मिलाना बुरा तो नही कहा जा सकता । विमाता ने मुझसे कभी ऐसी बात नही कही । आज उसके लिए जरूर

मुझे यह कार्य करना होगा ।

सुहासिनी विमाता की आखो मे प्रश्नार्थक दृष्टि से देखते हुए बोली, जिसमे यह भाव था, मै तुम्हारे लिए जरूर पूछूगी, परिणाम मै नही जानती, पर सब कुछ करूगी ।

"मा, जरूर बुलाऊगी, तुम्हारे लिए जरूर बुलाऊगी ।"

सुहासिनी राजू के कमरे की तरफ बढी । उसको एक-एक कदम आगे बढाने मे ऐसा अनुभव होने लगा मानो पैरों में बहुत भारी लोहे की साकले डाल दी गई हो ।

द्वार पर पहुचकर खडी हो गई । देखा, राजू आराम-कुर्सी पर लेटे गहरी सोच मे है । अपने आने की सूचना देने के लिए सुहासिनी ने गला खखारा । राजू ने देखा, सुहासिनी दरवाजे पर खडी है, उसके वदन से निर्मलता और प्रसन्नता फूट रही है ।

राजू ठीक से बैठते हुए बोला—"आओ सुहासिनी, बैठो ।"

"मै बैठने के लिए नही आयी, आपसे एक जरूरी बात पूछने आई हू ।"—सुहासिनी ने शान्त चित्त हो कहा ।

"पूछो, एक क्या, सौ बाते पूछो ।"

"पहले वचन दीजिए ।"

"मुझपर विश्वास नही ?"

"विश्वास की बात नही, शायद बाद को टाल दे तो !"

"यकीन न हो तो लाओ अपना हाथ !"

"जरूरत नही, आपका कहना काफी है," गभीर हो सुहासिनी बोली।

राजू ने सोचा कि सुहासिनी उससे शादी की बात पूछेगी, उसका दिल उछलने लगा। उमग मे आकर कहा—"अच्छा, भई, मै वचन देता हू। तुम जो भी कहोगी, उसका पालन करूंगा।"

"यह तो बताए, खाना क्यों नही खाया।"

"मेरा मन उदास है, सुहासिनी! आज माताजी से शादी के संबन्ध मे झड़प हो गई। मा नाराज मालूम होती है। थोडा समय जैसे-तैसे काट दू तो शाम तक सब कुछ ठीक हो जाएगा।"

"लेकिन आप यह नही जानते कि घर मे कोई खाना न खाए तो औरत का दिल कैसे तड़पता है!"

"इसमे तड़पने की क्या बात है? भूख न रहे तो क्या किया जाए!"

"भूख लगती क्यो नही, यही तो जानना चाहती हूं!"

अपनी शादी के प्रसग को यादकर डॉक्टर का दिल उमड़ पड़ा। पिघलते हुए कहा—"सुहासिनी, तुम नहीं जानतीं, मै इस घर में कितना परेशान हूं!"

"परेशान होने की क्या जरूरत है? आपको किस बात की कमी है?"

"तुम नही जानती, यहां तक कि मै शादी भी अपनी

इच्छा से नही कर पाता हू।"

"अपनी अम्मा को समझाइए। मान जाएगी।"

"यही तो सभी बुराइयो की जड है। इसी बात को लेकर आज वाद-विवाद हुआ। मै इसी कारण खाने की इच्छा नही रखता हूं। जहा दिल दु खी है, वहा कोई चीज अच्छी नही लगती। सब फीकी ही मालूम होती है।"

"तो अपनी पसन्द की लड़की से शादी कर लीजिए, मामला खतम!"

"वह माने तब न। मनाने की कोशिश कर असफल रहा। दूसरी विडबना यह है कि मै जिस लड़की से प्यार करता हू, वह मुझे प्यार करती है कि नही, आज तक नही जान पाया। औरत अपने दिल को छिपाती है।"

"पूछकर देखो, अगर वह मान जाएगी तो माताजी को भी मना सकते हैं।"

"वह युवती बुरा मान जाए तो?"

"उसके मा-बाप के ज़रिए पता लगा सकते है!"

"मा-बाप न हो तो।"

"इसका तो जवाब मैं नही दे सकती। इतना कह सकती हूं कि ऐसी हालत मे सीधे उस युवती से ही पूछना बेहतर है।"

"वह युवती तुम हो तो..."

सुहासिनी चौक उठी। उसका चेहरा विवर्ण हो गया। गम्भीर हो बोली—"डॉक्टर, मेरा परिहास कर रहे है?"

"नही सुहासिनी, अपने दिल की बात बता रहा हूं।"

"दूसरे के दिल को भी जानने की जरूरत नही ?"

"दूसरे के दिल मे क्या है, कैसे जाना जा सकता है ? यही तो मै बता रहा था। क्या दूसरे के दिल को जाने बिना प्रेम करना अपराध है ?"

"अपराध तो नही कह सकती, लेकिन प्रेम दोनो तरफ से फलता है। अन्यथा वह काम कहलाता है।"

"तुम मुझसे प्रेम नही करती हो ?"

"क्यो नही, जरूर करती हू..."

राजू का चेहरा खिल उठा।—"मै कितने दिनो से तुम्हारे मुह से यह बात सुनने की प्रतीक्षा करता रहा, प्यारी..." राजू बोला।

"ओहो, औरत के कोमल कठ से प्रेम शब्द का नाम सुनकर पुरुषो की बाछे खिल जाती है। लेकिन उस नशे के उतरते ही वे घृणित रूप में सामने आते हैं। अपने काले दिल पर मुहब्बत-रूपी सोने का मुलम्मा चढाकर ऐसा अभिनय करते है कि देखनेवालों को लगता है, वे जिस पर फिदा हैं, उसके लिए जान ही दे रहे है,"—सुहासिनी गम्भीर हो गई।

"मैं ऐसा व्यक्ति नही हू, सुहासिनी! मैं दिलो-जान से तुम्हें प्यार करता हूं।"

"क्यों नही, डॉक्टर सबसे प्यार करता है।"

"मेरी समझ मे नही आता, तुम क्या कह रही हो।"

"धीरे से समझ में आएगा।"

"कितने दिन तक प्रतीक्षा करू ?"

"जितने दिनो की जरूरत पड़े।"

"मै यह सारी तपस्या तुम्हारे लिए कर रहा हू।"

"हा-हा, ये तो मर्दो की आए दिन की बाते है।"

"रोज एकपर जान देते है, दिन मे कई बार मरते है, मर-मरकर जीते है। जी-जीकर मरते है। इस चक्कर मे न मालूम कितनी अबोध लड़कियो के दिल पिस जाते है, क्या कहा जाय !"

"सुहासिनी, मै ऐसा नीच नही हू—मैने आज तक किसीसे प्रेम नही किया। जिस दिन तुम्हे देखा, उसी दिन से मैने तुम्हे अपने दिल मे बसाया। तबसे तुम्हारी ही प्रणय-मूर्ति की आराधना कर रहा हू।"

"फिर भावावेश मे कविता कहने लग गए। आपका प्रेम करना काफी नही है। मुझे भी तो करना होगा !"

"अभी तुमने कहा, प्यार कर रही हू।"

"मै प्राणी-मात्र से प्यार करती हू, जिसमे कोई विकार नहीं है।"

"आखिर मुझमे किस बात की कमी है? मेरे प्रेम का तिरस्कार क्यों करती हो ?"

"हृदय केवल किसीके रूप, पद और धन पर ही नही रीझता, उसे अनुभूति की भी आवश्यकता है। हठात् कोई किसी-

को देख प्यार करने लग जाए तो वह प्रेम नही, आकर्षण है, काम है, वासना है। ऐसे तो हर युवक अनेक युवतियो की ओर आकृष्ट हो सकता है।"

"सुहासिनी, तुम जो भी कहो, मै तुमसे प्यार करता हू, तुम्हारे बिना मेरा जीवन अधकारमय हो जाएगा। मै सच्चे दिल से प्यार करता हू, यकीन करो।"

"डॉक्टर, आप भूल कर रहे है, पल-भर में निर्णय कर दिल किसीको सौपा नही जाता है। सच्चे प्रेम मे चचलता नही, स्थिरता होती है, विवेक होता है और होती है आत्म-समर्पण की भावना।"

"तब तो मेरे प्रेम का तिरस्कार करोगी ? सुहासिनी, सुहासिनी··" उसे पकड़ने आगे बढा। झपटकर उसे अपनी बाहुओं में ले लिया।

सुहासिनी पराये पुरुष के स्पर्श-मात्र से सिहिनी बनी। नारी सहज आक्रोश से गरज उठी—"डॉक्टर, विवेक खोकर पशु जैसा व्यवहार न करो।" यह कहकर उसने एक झटका दिया, दूसरे ही क्षण वह कमरे से बाहर थी। तेजी से घूमते समय चौखट से उसका सर टकराया और खून के छीटे उछलने लगे।

बड़ी देर तक डॉक्टर के कमरे से सुहासिनी को न लौटते देख विमाता की शंका और भी बढ गई। उसने खिड़की पर लगे कर्टन को उठाकर देखा, सुहासिनी राजू की बाहुओं में है।

वह देख नही पाई । उसका सारा क्रोध उबल पड़ा। वह आखों के होते हुए भी अंधी हो गई ।

सुहासिनी को उचित सबक सिखाने का निश्चय कर वह ज्योही घूमकर दरवाजे के पास पहुची त्योंही सुहासिनी बाहर आ गई । बिना सोचे-समझे विमाता सुहासिनी की वेणी पकड़कर खीचती-घसीटती फाटक तक ले गई। इस बीच चार-पाच चपत भी लगाई, तब भी क्रोध शान्त न हुआ तो ज़ोर से वेणी को पीछे की तरफ खीचकर आगे ऐसे ढकेल दिया कि सुहासिनी का माथा दीवार से टकराया। वह माथा पकड़े कलप ही रही थी कि विमाता ने ऊपर से गालियो की बौछार की—

" डायन कही की—तूने उसे अपने प्रेमजाल मे फसाया, ऊपर से सीधी दिखाई देती है ! तूने उसे बिगाडकर दम लिया, इसलिए वह पचास हजार रुपये दहेज को लात मार रहा है, तेरा तिरिया-चरित्र जानती न थी ।

" हमारा नमक खाकर इसी घर को डुबोना चाहती है, आगे फिर कभी इस घर मे कदम रखा तो तेरी हड्डी-पसली तोड़ दूगी । तेरे कारण मेरी सोने की सी गृहस्थी मे फूट पैदा हो गई है । मुहजली, जा यहां से, चली जा !"—गरजते हुए पागल की भाति पीटने लगी ।

यह सारी घटना पल-भर में हो गई । राजू स्वय अपनी विवेकशून्यता पर पछता रहा था। ऊपर से यह वज्रपात देख

राजू का दिल बैठ गया। एक छलाग मे विमाता के निकट पहुचकर उसे हटाते हुए बोला :

"मा, यह तुम क्या कर रही हो, वह मानवी नही, देवी है। तुमने उसपर हाथ चलाकर बहुत बुरा किया, दूसरा होता तो तुम्हारा खून पी जाता,"—राजू क्रोधावेश मे हाफने लगा।

विमाता अपनी जबान चलाती रही। राजू भी डटकर उन सबका उत्तर देता रहा। उसे घर मे भेजकर देखता क्या है, सुहासिनी अपने दोनो हाथो से मुह छिपाए रोती-बिलखती पैदल चली जा रही है। खून की बूदे सुहासिनी के मार्ग का शेष-चिह्न बनी दीख रही थी। राजू खून के आसू पीकर देखता ही रहा।

२७

सुहासिनी पलंग पर लेटी हुई है। उसके माथे पर पट्टी बधी हुई है। अपमान, चिन्ता और ग्लानि से उसका कोमल हृदय ऐसा घायल हुआ है कि वह उस व्यथा को भूलने का प्रयत्न करके भी भूल नही पा रही है। वह दूसरों का उपकार करने चली तो अपकार का सामना करना पडा। यह कैसी विडंबना है!

इस घटना ने सुहासिनी पर ऐसा प्रभाव डाला कि वह

रोग-ग्रस्त हुई। वह सदा-सर्वदा चिन्तित रहती। न समय पर खाना, न समय पर सोना! ऊपर चौबीसो घटे चिन्ता सवार, इस तरह दिन-ब-दिन उसका स्वास्थ्य गिरता ही गया। जीवन से वह विरक्त रहने लगी। वह सोचती कि अब वह किसके लिए जिए? उसका लक्ष्य क्या है? उसे इसका कोई उत्तर न मिलता। दुनिया सूनी-सूनी दिखाई देती। हृदय भी शून्य मालूम होता। उत्साह का रस सूख गया। अत वह खोई-सी रहती।

सुहासिनी का चिन्ताग्रस्त होना घर-भर के लोगो के लिए बड़ी समस्या बन गई। चिकित्सा चलती रही लेकिन उसका फायदा दिखाई नही देता था। राजाराम और सीतालक्ष्मी सुहासिनी की सेवा मे कोई कसर नही रखते थे। सुहासिनी ही दोनो का आधार बन गई थी। उसको देखकर ही वे प्रसन्न रहते और अपने जीवन को सरस बनाते।

शाम का समय था। राजाराम ने सुहासिनी को दवा पिलाई। चिन्तित वदन से सुहासिनी को पखा झलता रहा। सुहासिनी ने एक-दो बार मना भी किया लेकिन राजाराम से सहा नही गया। राजाराम के चेहरे को सुहासिनी ने ध्यान से देखा लेकिन उसमे कही वासना, कृत्रिमता और आकाक्षा दिखाई नही दी बल्कि निर्लिप्तता, श्रद्धा और सात्त्विक स्नेह-भावना दृष्टिगोचर हुई। उसने सोचा—आह, राजू और राजाराम मे कितना अन्तर है! एक सुशिक्षित, दूसरा अर्ध-

शिक्षित ! एक ग्रहंकारी, दूसरा स्वाभिमानी । ग्रच्छाई की कसौटी कौन है ? व्यक्ति ग्रादर्श की बाते कर सकता है, चिकनी-चुपड़ी बातें करके दूसरो की दृष्टि मे तात्कालिक रूप मे बडा समभा जा सकता है लेकिन परिस्थिति के सामने व्यक्ति सच्चे रूप मे प्रकट होता है । कुछ लोग ऐसे है जो दूसरो की सुन्दर सपत्ति लूटने की ग्राकाक्षा रखते है, तो कुछ लोग उस सपत्ति के पोषण मे मदद पहुचाते है । दूसरे वर्ग के लोग ग्रन्य लोगो की रूप, गुण, ग्रौर यश रूपी सपत्ति देख ग्राप प्रसन्न होते है ग्रौर ग्रन्यो को उसका परिचय भी देते है । यह सब व्यक्ति के भीतर जो दृढ़ चेतना है, वही सचालित करती है ।

सुहासिनी इस विचारधारा मे खो गई । पखे की शीतल वायु ने उसे सुषुप्त जगत में पहुचा दिया ।

सुहासिनी को सोते देख राजाराम वहा से उठा ग्रौर बगल मे स्थित ग्रपने कमरे मे गया । सीतालक्ष्मी पहले से ही उसकी प्रतीक्षा कर रही थी । राजाराम को देख उसने चर्चा छेड़ दी ।

"बेटा, क्या से क्या हो गया !"

"ग्रमीरों के यहा क्या-क्या नही होता है मा !"

"ग्रमीर हुए तो ? ग्रौरतों का ग्रपमान कर सकते है ?"

"धन-बल ग्रौर पशु-बल उन्हे ग्रंधा बनाता है, मा !"

"कैसे दुर्दिन देखने पड़ रहे है, बेटा !"

"जिन्दगी की राह कैसी होती है, कौन जानता है मां !"

"मैं सोचती हू, अब सुहासिनी का विवाह करना अच्छा होगा। वह कितने दिन तक इस तरह अपना जीवन बसर कर सकती है ? दुनिया क्या सोचेगी ? हम कब तक उसका विवाह किये बिना घर मे बिठा सकते है ? उसके पिता भी नही रहे, हम ही लोगो को उसके विवाह का प्रबन्ध करना होगा।"

"ठीक कहती हो मा, कही सुहासिनी के योग्य अच्छा सम्बन्ध देखकर विवाह करेंगे। इस मामले मे उसकी भी राय लेना ठीक होगा।"

"हम घर में बैठे चिन्ता करते रहेंगे तो काम नही चलेगा, बेटा, कही अच्छे वर को ढूढना है। तुम भी हमेशा इस बात को मन में रखो। कोई न कोई अच्छा सम्बन्ध हाथ लग ही जाएगा।"

"मै तो कोशिश करूंगा ही लेकिन सुहासिनी के योग्य पुरुष बहुत कम मिलेंगे, मा ! धनी परिवार का वर मिल सकता है। लेकिन हम मोटी रकम दहेज देकर उसे खुश नही कर सकेंगे। यदि ऐसा व्यक्ति मिल भी जाए तो वह चरित्र-वान हो, ऐसा तो नही कह सकते। सुहासिनी का जीवन सुखमय नही होगा। उसको दु.खी देख हम सब भी खुश नही रह सकते। इसलिए धनी की अपेक्षा चरित्रवान पुरुष को ढूढना बेहतर है। उसकी आमदनी डेढ सौ-दो सौ की भी हो, वे मजे मे दिन काट सकते है। सुहासिनी तो गृहलक्ष्मी है। वह अपने गृह को स्वर्ग तुल्य बनाएगी। हम भी कभी-कभी

उसके यहा हो आ सकते है । हमारा सबन्ध हमेशा बना रहेगा । ऐसा न होकर आनेवाला व्यक्ति घमडी हो तो हम उस घर मे कदम भी नही रख सकते । अपनी सुहासिनी को देखे बिना हम लोग कैसे रह सकते है, मां ? उसका और कोई है ही कहां ? हमको भी दूर पाकर वह बहुत दु.खी होगी। उसका दु.ख मै नही देख सकता । वह जिस घर मे जाएगी, वह घर फलता-फूलता रहेगा और शान्ति तथा आनद का निलय होगा । ऐसी पुत्री को जन्म देकर मामा धन्य हुए । वे जहा भी रहेगे उनकी आत्मा प्रसन्न ही रहेगी ।"

"सुहासिनी को पराये घर कैसे भेज सकते है, बेटा ? फिर सरला को देखनेवाला कौन रहेगा ? ऐसा नही हो सकता। मेरे भाई का यह घर खाली ही रहेगा ? यह कभी नहीं हो सकता । मेरे भाई का नाम तक मिट जाएगा ।"

"तब क्या किया जाए, तुम्ही बताओ न ?"

"मै सोचती हूं कि हम ऐसे वर को ढूढे जो यही पर रह सके । इस घर को छोडने मे सुहासिनी का दिल भी बैठ जाएगा । सरला की देख-रेख भी नही हो सकेगी ।"

"मैं मानता हूं, कोई आकर यहां रह सके, उससे बढ़कर हमे क्या चाहिए ? हम दोनो कहीं चले जाएगे । लेकिन अब सवाल यह है कि सुहासिनी को शुद्ध हृदय से प्यार करनेवाला गुणवान व्यक्ति मिले । चाहे आमदनी कम भी क्यों न हो । सुहासिनी सभाल लेगी ।"

"तब तो ये सब गुण तुममे भी है। तुम उससे विवाह करने को तैयार हो क्या ?"

"अम्मा, मैं ? यह तुम क्या कहती हो ? तुम्हारा दिमाग तो खराब नही हुआ ? सुहासिनी के साथ मेरा विवाह ? यह कभी सभव नही। मै नीच, पतित और अयोग्य हू। सुहासिनी देवी, पवित्रात्मा और योग्य है। हम दोनो मे जमीन-आसमान का अन्तर है। उसकी कल्पना तक करना मूर्खता की बात होगी। फिर कभी मेरे सामने यह बात कहोगी तो मै सहन नही कर सकता,"—राजाराम गरज उठा।

"इसमे बुराई क्या है ? तुम तो पराये नही हो। वह तुम्हारे मामा की बेटी तो है।"

"तो उचित और अनुचित, योग्यता आदि देखने की जरूरत नही ? रिश्ते मे वह मामा की बेटी होने-मात्र से क्या वह मेरी पत्नी बन सकती है ?[१] क्या और बातों को देखने की जरूरत नही ?"

"इस सबन्ध मे मै कभी तुमसे कुछ नही कहूगी। लेकिन इतना तो ध्यान रखो—किसी न किसी प्रकार प्रयत्न करके सुहासिनी के लिए एक अच्छे और योग्य वर को ढूढो। यह सारा भार तुम्हारे ऊपर है।"

"अम्मा, मैं तो दिलोजान से कोशिश करूगा ही, साथ

---

१ आन्ध्र देश मे मामा की बेटी (ममेरी बहिन) के साथ विवाह करने की परिपाटी है, परन्तु क्रमश यह प्रथा उठती जा रही है।

ही दीनदयालजी से भी कहना अच्छा होगा। वे बड़े अनुभवी है। उनके द्वारा यह काम जल्दी सफल हो सकता है।"

"दीनदयाल की मदद तो हमें लेनी ही चाहिए। लेकिन डॉक्टर के घर मे घटी हुई घटना से वे बहुत दु खी है। सुहासिनी को अपना मुह दिखाने मे लज्जा का अनुभव कर रहे है। इसलिए कहला भेजने पर भी आने में वे सकोच कर रहे हैं। उनसे जो कुछ भी होगा हमारी मदद करेंगे ही। उनपर अधिक भार न डालकर हमे ही देखना अधिक अच्छा होगा।"

"अच्छा है, मा, ऐसा ही होगा,"—राजाराम ने घड़ी देखी। बड़ी आतुरता के साथ सुहासिनी के कमरे में दौड़ गया। देखता क्या है, सुहासिनी लेटे-लेटे छत की ओर देखती हुई किसी गहरी सोच मे निमग्न है।

राजाराम ने सुहासिनी को दवा पिलाई। दवा की शीशी राजाराम के हाथ मे दे सुहासिनी उसकी तरफ देखती ही रही। आज उसकी दृष्टि मे एक विचित्र अनुभूति थी। ऐसी अनुभूति को राजाराम ने कभी नहीं देखा। राजाराम का शरीर एक विचित्र आनंद के अनुभव से पुलकित हो उठा।

सुहासिनी ने राजाराम और सीतालक्ष्मी का सारा वार्तालाप सुना। राजाराम के उदात्त हृदय का परिचय पाकर वह दंग रह गई। उसने कभी नही सोचा था कि राजाराम की नसों में ऐसे उत्तम गुण घर कर गए है। व्यक्ति बाहर से

देखने मे कभी-कभी पागल-सा भी दिखाई देता है। लेकिन उसके दिल के भीतर उज्ज्वल गुणो से युक्त देवता का जो निवास होता है, उसे बहुत कम लोग पहचान पाते है। जो पहचानता है, वही उसका भक्त हो जाता है। इसलिए आत्मा और शरीर मे कोई साम्य नही होता है। किसीके चेहरे को देख उसकी हृदय-गत भावनाओ को पढ सकना कभी संभव है, तो कुछ व्यक्तियो मे वह असभव भी। कुछ लोग प्रयत्नपूर्वक अपनी भावनाओं का अपने मनोविकार या क्रियाओ के द्वारा प्रदर्शन करते है, तो कुछ लोग उन्हे छिपाने मे अधिक आनद का अनुभव करते है। लेकिन उनका मूल्याकन उसी समय होता है जब उनके वास्तविक रूप को देखा जाता है। पृथ्वी देखने में सब जगह समान ही दीखती है, लेकिन उसके गर्भ मे किस जगह कौन-सी अमूल्य धातुए छिपी पड़ी है, क्या पता ?

राजाराम की अपूर्व सेवा से सुहासिनी काफी प्रभावित हुई। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की निस्वार्थ भाव से, श्रद्धा के साथ सेवा करता है तो वह महान ही कहा जाएगा। सेवा का भाव मनुष्य के सर्वोत्तम गुणो मे मुख्य माना जाता है। आज उसके विचारो से सुहासिनी इतनी प्रभावित हुई कि अनायास ही उसका हृदय राजाराम की ओर आकृष्ट हुआ। उत्तम गुण हृदय की स्वच्छ रागात्मक वृत्तियो को उत्तेजित करते है···ज्यों-ज्यो दिन बीतते गए, त्यों-त्यो सुहासिनी राजाराम के चरित्र और व्यवहारो से प्रभावित हो उसकी ओर झुकती ही गई।

"राम, तुम बडे भाग्यशाली हो।"

"मा, मै अभी तक समझ नही पाया, मुझमे कौन-सा ऐसा गुण है, जिसे देख सुहासिनी ने यह निर्णय किया। यह उसकी उदारता और त्याग ही कहा जा सकता है।"

"त्याग करने मे मनुष्य ऊपर उठता है। त्यागी का सकल्प सुनिश्चित होता है। मैने पहले ही तुमसे कहा था, तुम गरज उठे थे।"

"उसके दिल की बात जाने बिना हम लोगों के इच्छा करने मात्र से क्या होता है, मा! उसीके घर मे रहते उसको पाने का प्रयत्न करना हमारी ज्यादती न होगी? सिवाय इसके मैने कई ऐसी भूले की है, जिन्हे कोई क्षमा नही कर सकता है। आज मैं भले ही बदला हुआ होऊ, लोग तो यही शका करेगे कि पहले की आदतो की गध बनी रहेगी और समय पाकर फैल जाएगी। इसलिए मा, व्यक्ति गिरता है तो उसके सुधर जाने पर भी समाज उसपर यकीन नही करता। उसे शकालु दृष्टि से देखता है।

"यहा तक कि मानवता पर जिनका प्रगाढ विश्वास है, वे भी व्यक्ति के सुधार को तो महत्त्व देते है, किन्तु पतित व्यक्तियो पर सहसा विश्वास नही कर पाते है। मनुष्य में बहुत बड़ा मानसिक परिवर्तन तभी होता है जब उसके जीवन मे मोड़ ला सकनेवाली कोई महत्त्वपूर्ण घटना घटित हो। ठोकरें खाकर आदमी सभल जाता है, संभलने की कोशिश

करता है तो उसपर यकीन किया जा सकता है ।

"सुहासिनी ने सचमुच त्याग ही किया है मा ।"

"त्याग करने के लिए अनुकूल वातावरण भी तो चाहिए ।"

"तो तुम समझती हो, उस वातावरण की सृष्टि तुमने ही की है ? उसके पिता होते तो क्या मुझ जैसे व्यक्ति को वह अपने गले बाधती ? बोलो, चुप क्यो हो, मा ?"

"मै मानती हू । आज की हालत मे तुम्ही उसके योग्य पुरुष हो । हा, तुमने जो भूले की, वे सब अनजान मे । भूल करके जो पहचानता है, वही बडा है । अपनी भूल को स्वीकार कर उसे सुधारना व्यक्ति का बड़प्पन ही कहा जाएगा ।"

"हा मां, तुम्हारा बेटा बड़ा है । तुम छोटा कैसे कहोगी ?"

हाल मे दीनदयाल को कदम रखते देख मा-बेटे ने उनका स्वागत किया ।

विवाह-सबन्धी कई बातों पर चर्चा हुई । सुहासिनी के इस निर्णय की दीनदयाल ने बडी प्रशसा की । उन्होने दस-बारह दिन पूर्व जब विवाह का प्रस्ताव रखा था, उस वक्त काफी बहस हुई, आखिर सुहासिनो ने राजाराम की इच्छा जानने को कहा तो स्वय दीनदयाल आश्चर्यचकित हुए और उनके नेत्रों से आनंदाश्रु छलक आए थे ।

आज राजाराम मे भी उदात्त भावनाए देख दीनदयाल बहुत ही खुश हुए। विवाह के खर्च और प्रबन्ध के सम्बन्ध मे भी काफी देर तक चर्चा हुई।

उचित निर्णय के बाद विवाह की तैयारिया होने लगी।

संध्या का समय था।

'शान्ति-निलय' के सामने बड़ी चहल-पहल थी। बडा पडाल केले के स्तम्भो, बिजली की बत्तियो और रग-बिरंगे फूलो से अलकृत था। लोग उत्साह के साथ विवाह की तैयारियों मे हाथ बटा रहे थे। सुहासिनी के पिता के जितने भी स्नेही व परिचित थे, सब इन तैयारियों मे दिलचस्पी ले रहे थे। सुहासिनी के मना करने पर भी लोग वस्तु-रूप मे मदद देते रहे। यह सोचकर वह स्वीकार करती गई कि लौटाने पर वे दु खी होगे।

राजाराम और सीतालक्ष्मी भी विवाह के प्रबन्ध मे जी तोड़ मेहनत करते थे। सुहासिनी सारा प्रबन्ध देख-तो लेती थी, किन्तु उसका मन अपनी बहिन को देखने के लिए छटपटाने लगा। बार-बार वह फाटक की ओर झाकती, फिर आया न देख चिंतित हो जाती। कलकत्ता-मेल के आने का वक्त हो गया।

सरला के आगमन का प्रतीक्षित मुहूर्त भी आया। शंकरन नायर अकेले लाठी टेकते हुए कुछ सामान लिये आ रहे है।

तब भी सुहासिनी ने सोचा, सरला पीछे आती होगी। इसलिए शंकरन नायर के समीप लपककर सुहासिनी ने पूछा—

"दादा, सरला कहां है ?"

"कल सुबह तक पहुंच जाएगी। आज उसकी प्रैक्टिकल परीक्षा थी, वह जरूर आयेगी।"

नायर से कुशल-प्रश्न पूछ ही रही थी कि उसका मन विवाह की तैयारियो मे हाथ बटाने को व्याकुल हो उठा। वह भी उन लोगो मे शामिल हो गया।

सुबह की गाडी भी आयी, किन्तु सरला का पता नही। सुहासिनी अधीर हो उठी। अपने विवाह के समय बहिन की अनुपस्थिति उसे चिन्ताकुल बनाने लगी। उसका विश्वास अभी बना हुआ था, बहिन आयेगी, अवश्य आयेगी। विवाह का मुहूर्त साढे दस बजे था। इस बीच कोई गाड़ी भी नही थी। न मालूम क्यों सुहासिनी के मन मे बहिन के आ जाने का विश्वास था।

मगल-सूत्र बाधा जा रहा था। शहनाइयो की मधुर ध्वनि गूज उठी। दुलहिन सुहासिनी ने फाटक की ओर देखा। उसके खुलने की आवाज न देख उसकी आखो से दो बडी-बड़ी गरम आसू की बूदे गिरी। सुहासिनी ने ज्योही सिर झुकाया त्योही सामने बैठे राजाराम के चरणो पर वे बूदे गिरकर फिसलने लगी। चौककर राजाराम ने सुहासिनी की ओर देखा। उसे लगा, सुहासिनी के हृदय-सिन्धु मे कोई घोष सुनाई

दे रहा है ।

इस शुभ घड़ी मे शोक ? आनद के साथ यह शोक भी अपना नाता जोड़े मानव को जगत के किसी चिरतन सत्य का बोध करा रहा हो जैसे !

समय किसीकी प्रतीक्षा नही करता, चाहे सौ भेटे चढावे, हज़ारो मिन्नते करे, लाखो बार करुणापूर्ण स्वर में क्यो न पुकार उठे । दिल की धडकन की भाति घड़ी का पेडुलम धडकता रहता है । सेकण्ड मिनट मे, मिनट घटो मे···साल और युग के युग ही बीत जाते है । इसीलिए साझ के समाप्त होते ही उषा आ धमकती है । अधकार से व्यक्ति प्रकाश को देख फिर से उत्साह से भर उठता है । यही दुनिया का क्रम है ।

वर-वधू को लोगो ने अक्षत फेककर आशीशे दी । सुहासिनी-राजाराम का विवाह सपन्न हुआ ।

जीवन मे विवाह आनद का समय होता है । उस समय के व्यतीत होने के बाद व्यक्ति के जीवन मे अनेक समस्याए उत्पन्न होती है ।

विवाह-सस्कार तो पूरा हुआ । सुहासिनी का मन बेचैन था—'सहोदरी क्या राजाराम के साथ विवाह को पसन्द नही करती, इसीलिए तो नहीं आयी । छि· मैं यह क्या सोच रही हूं, सरला के प्रति ऐसी कल्पना नहीं करनी है ।' इन्हीं विचारो में निमग्न थी ।

शकरन नायर को देख उसने सरला के न आने का कारण पूछा। दु खी हृदय से नायर ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

सुहासिनी पर मानो बिजली गिर पडी। झझावात के प्रकोप से जिस प्रकार बडे-बडे वृक्षराज पृथ्वी पर गिर जाते है, वैसे ही सुहासिनी चिल्लाकर धडाम से गिर पड़ी। उसके हृदय मे प्रलय-काल का महाघोष प्रतिध्वनित होने लगा।

२८

रात-भर गाड़ी मे सुरेश की आखो मे नीद नही रही। वह मन-ही-मन अपने पिता को कोसने लगा। तार में समाचार देते तो वह निश्चिन्त घर पहुचता। शायद कोई अनहोनी बात होगी, तभी तो उसका उल्लेख नही किया है। सच्ची बात बता देने से मै घबड़ा जाऊं, यह सोचकर यू ही तुरन्त घर आ जाने को कहा है। और कोई कारण न होगा। माता मृत्यु-शय्या पर होगी।

सोचते-सोचते सुरेश का दिल काप उठा। मेरे घर पहुचने तक मा जीवित होगी? उसको मै देख पाऊंगा? मुझसे कितना प्यार करती है! पिताजी नाराज होते या डाटते तो मेरा पक्ष लेकर मुझे बचाती। मै जो भी माग करू, मगवा देती। जितने भी रुपयों के लिए लिखू, पिताजी से लड़-झगड़कर भिजवा

देती है। मा न होती तो मेरी जिन्दगी आराम से न कटती। इतना बड़ा हो गया हू, लेकिन क्या हुआ अब भी मै उसकी आखो का तारा हू, उसका पुत्र हू, लाड़ला हू।

ऐलूर स्टेशन पर उतरकर घबडाते हुए सुरेश ने घर मे प्रवेश किया। उसका दिल धड़क रहा था। उसकी आखे घर में चारो ओर किसीको ढूढने लगी। सामने अपनी मा को देख वह अपनी आंखो पर यकीन न कर सका। उसने जो कुछ भी कल्पना की थी, सब झूठ निकली। उसकी मा तो स्वस्थ और प्रसन्न है।

बेटे को देखते ही वासती बहुत खुश हुई। आज सुबह ही सुबह उठते ही उसने सोचा था कि आज सुरेश जरूर आयेगा। उसने पूछा—

"बेटा, क्यो इतने दुबले-पतले हो गए हो ? खाना अच्छा नही मिलता है क्या ?"

"नही मा, खाना तो अच्छा ही मिलता है, परीक्षा नजदीक आ गई है न ! रात-भर जागकर ज्यादा पढ़ने से विद्यार्थी सब कमजोर हो जाते है। दिमागी मेहनत आदमी को चूसती है, मा !"—सुरेश ने अपनी चालाकी दिखाई।

वासती सोचने लगी कि उसका बेटा खान-पान भी छोड़-कर पढ़ाई में लग गया है। इसलिए वह जरूर बड़ा आदमी बनेगा। वह कुछ पूछना ही चाहती थी, सुरेश बोल उठा—"मां, तार क्यो दिया है ? क्या बात है मा, जल्दी बताओ।

पिताजी कहां है ?"

"तुम्हारे पिताजी बाहर गये है, बेटा, आते ही होगे। हाथ-मुह धोओ, नहाओ ! सारी बाते बताएगे। वैसे कोई घबड़ाने की बात नही है।"

"नही मा, मुझे पहले बताओ, ऐसी जल्दी क्या आ पड़ी थी ?"

"जल्दी की कोई बात नही। कोई अच्छा सबन्ध आया था। वह निश्चित करने के लिए तुम्हे तार दिया गया।"

"इतनी जल्दी ? पढाई पूरी होने दीजिए, फिर देखा जाएगा।"

"पढाई तो पूरी हो ही जाएगी। जब अच्छा सम्बन्ध आता है तो उससे हाथ धोना कोई बुद्धिमानी का काम नही," घर मे प्रवेश करते हुए बाबू रामप्रसाद ने कहा।

पिताजी को देखते ही सुरेश भीगी बिल्ली बन गया। यह उसकी जिन्दगी का सवाल था। इस समय अगर वह मौन धारण करेगा तो उसका लक्ष्य ही बदल जाएगा। इसलिए साहस बटोरकर बोला—

"मेरी सम्मति की कोई जरूरत नही ?"

"हम तुम्हारे दुश्मन थोड़े ही है ? माता-पिता अपनी सतान की भलाई ही चाहते है।"

"मै यह नही कहता कि आप लोग मेरी बुराई की बात सोचते है। लेकिन मै चाहता हू कि पढ़ाई समाप्त होने के

बाद विवाह करे तो अच्छा होगा। नही तो पढ़ाई में खलल पड़ेगा।"

"कितने लोग शादी-शुदा हो नही पढते ? अब जो सम्बन्ध आया है, वह तब तक रुका रहेगा, इसकी क्या गारटी है ? एक ही लडकी है। करीब लाख रुपये की सपत्ति है। अब इसको लात मारोगे तो फिर तुम्हारा मुह देख कौन एक लाख रुपया देगा ?"

"पिताजी, लूली हो, लगडी हो, बदसूरत हो, तो भी एक लाख रुपयों के लोभ मे पडकर उसे मेरे गले मढ़ना चाहते है ?"

"वाह, तुम भी एक ही निकले, जो सारी बाते जानते हो। कोई भी माता-पिता ऐसा संबन्ध स्वीकार नही कर सकते। वह लड़की भी हमारे शहर की है। वकील गगाधर राव को तुम जानते ही हो। हैदराबाद मे उसकी वकालत जोरों पर है। लड़की को भी तुमने देखा है। क्या वह काली-कलूटी है ?

"लडकी अच्छी भले ही हो, क्या मेरी इच्छा की कोई जरूरत नही ?"

"तुम्हारी इच्छा ? तुम्हारे सिर पर पागलपन सवार है। नही तो ऐसी रूपवती और गुणवती लडकी तुम्हे कहा मिलेगी ?"

"पिताजी, मैं अभी शादी करना नही चाहता।"

"मै देखूगा कि तुम कैसे नही करोगे ?"—रामप्रसाद

गरज उठा ।

पिता और पुत्र मे वाद-विवाद बढते देख वासती बीच-बचाव करने आयी । वासती ने सुरेश को बहुत कुछ समझाया, फिर भी सुरेश टस से मस न हुआ । यह सबन्ध वासती को भी बहुत पसद आया था । वह जल्दी अपने पुत्र की शादी भी देखना चाहती थी । सुरेश उनकी एकमात्र सतान था । जब से वह मद्रास गया है, तब से उसे वह घर सूना दिखाई देने लगा । उसकी बहू घर मे लक्ष्मी की भाति इधर-उधर घूमती रहे, यह देखने की उसकी बडी लालसा थी । इसलिए उसने तार दिलवाकर सुरेश को बुलवा लिया था ।

वासती ने आशा की थी कि सुरेश उसकी बात की कदर करेगा । अब उसे आश्चर्य हुआ कि वह अपने पुत्र के हृदय को भी नही जान पाई । उसने निश्चय किया कि साम, दाम, भेद व दडोपायों से उसे काबू मे लाएगी ।

यह सोचकर वासंती ने गम्भीर कण्ठ से कहा—"सुरेश, बडो के साथ खिलवाड़ मत करो । हमने तुम्हारी खुशी के लिए सब कुछ किया । लेकिन यह हमारी प्रतिष्ठा का सवाल है । हमं दोनो ने लड़की के पिता को वचन दिया है । क्या अब हमारी नाक कटाना चाहते हो ?"

"वचन दिया तो क्या हुआ, मा ? अभी यह कह सकते है कि मेरे लडके को पसन्द नही आया ।"

"सुरेश, भोले मत बनो ! दिया हुआ वचन टालना हमसे

नही होगा । हमने मुहूर्त भी निश्चय किया है । मैने ही यह कहकर तुम्हारे पिताजी से सारा प्रवन्ध कराया कि मेरा बेटा मेरी बात जरूर मानेगा । अब तुम अपने माता-पिता की अवहेलना कर हमारे मुह पर कालिख पुतवाना चाहते हो ? इस अपमान को हम कैसे सहन कर सकते है ? तुम मेरी बात नहीं मानोगे तो मै यह सोचूगी, तुम मेरी कोख से पैदा नहीं हुए हो । मैं भी किसी कुएं मे कूदकर आत्महत्या कर लूगी । तुम जिन्दगी-भर पछताते रहोगे । कोई भी पुत्र अपनी मां को दु.खी नही बना सकता । इसलिए सोच लो, अब भी कुछ बिगड़ा नही ।"

"मां, मुझे माफ करो । मै तुम्हारी बात ज़रूर मानता । लेकिन मैने एक लडकी को वचन दिया है, अगर मै उससे शादी न करू तो वह जरूर आत्महत्या कर लेगी । उसके लिए ही सही, तुम मुझे माफ करो, मा ।"

"क्या कहा ? वचन दिया है ? वह भी किसी अनजान लड़की को ? तुम पढने गये या लडकियों को साथ लेकर घूमने ? यह करते तुम्हे शरम नही आती ?"—क्रोध से कापते हुए रामप्रसाद हुकार उठा ।

"पिताजी, आपके पैरो पड़ता हू । मेरी भूल को माफ कीजिए । मैने उससे प्यार करके बहुत बड़ी गलती की । अब बात बहुत बढ गई है । अब उसे धोखा देना ठीक नही ।"

"प्यार किया है, प्यार ? तुम तो राह चलनेवाली हर

किसीसे प्यार करोगे और अपने मा-बाप की इज्जत धूल मे मिलाओगे। अब भी सही, अपना यह पागलपन छोडकर इस सबन्ध को मान जाओ। वरना हमारा मुह न देखोगे।"

"पिताजी, पिताजी!"

"अब पिताजी को भूल जाओ। समझो कि तुम्हारा पिता मर गया है।"

"पिताजी· ·"

सुरेश का दु ख फूट पडा। उसके हृदय मे द्वन्द्व मचा। एक ओर सरला और दूसरी ओर मा-बाप उसके हृदय मे व्याप्त हो उससे वचन लेने पर कटिबद्ध है। किसको त्यागे और किसको स्वीकार करे? 'मै शादी न करूं तो सरला का भविष्य क्या होगा? वह मुझे कोसेगी, कृतघ्न समझेगी, धोखेबाज, धूर्त, कपटी और लपट समझेगी। और मै उसे अपना मुह कैसे दिखा सकता हू? मेरे कारण पुरुष वर्ग पर से ही उसका विश्वास उठ जाएगा। उसने मुझपर विश्वास किया। मुझे अपना सर्वस्व माना। अपना सब कुछ मेरे चरणो पर अर्पण किया। ऐसी नारी को क्या लात मारू? नही, नही, मैं ऐसा पाप कभी नही कर सकता। ऐसा कृतघ्न मै कभी नही बनूगा।'

दूसरे क्षण उसके दिल मे उसके मा-बाप छा गए। वे उसे धमकाने लगे, 'तुम हमारी बात मानो, नही तो आत्म-हत्या कर लेगे' वह सोचने लगा—'मैं अपने मा-बाप की बात न मानू तो उनकी प्रतिष्ठा मिट्टी मे मिल जाएगी। सब लोग

उंगली उठा-उठाकर यह कहेंगे कि 'यह धोखेबाज है। मै यह कैसे सहन कर सकता हू ?

' मेरी मां, दयामयी मा, प्रेम की प्रतिमा मां ! उसका दु:ख मैं कैसे देख सकता हूं ? उसने मेरे लिए क्या-क्या त्याग नही किया ? मुझे जन्म दिया। अपना सब कुछ समर्पित किया। ऐसी मा को मैं कैसे खोऊं ? उसके बिना यह सारी दुनिया अन्धकारमय दिखेगी। मुझे अपने मा-बाप के लिए यह त्याग करना ही होगा।'

विकल हो रोते हुए सुरेश चिल्ला उठा—

"पिताजी, आपकी आज्ञा का पालन करूंगा !"

रामप्रसाद ने अपने पुत्र को बदला हुआ पाकर उसे गले लगाया। उस आलिगन मे सुरेश का दिल सरला की कल्पना कर रो पड़ा। सरला आर्तिनी बनकर उसके दिल के किसी कोने में सिसकती रही।

जन्म, विवाह और मृत्यु जीवन पर प्रभाव डालनेवाली अविस्मरणीय घटनाए होती है। जन्म से परिवार बढता है तो विवाह से परिवार जुड़ता है, पर मृत्यु से सभवत: परिवार का संतुलन होता है। ये तीनों घटनाएं व्यक्ति के जीवन मे अवश्य घटित होती हैं, किन्तु विवाह व्यक्ति के संकल्प पर होता है। जन्म और मृत्यु मे सकल्प-विकल्प की कोई संभावना नही होती। विज्ञान इनपर अंकुश करे, यह तो भविष्य की

बात है ।

मानव के जीवन मे मोड लानेवाली घटना विवाह होता है । विवाह मे किसीको स्वतत्रता प्राप्त होती है तो कोई अनिच्छा और दबाव मे आकर विवाह-वेदी के सामने बलि का बकरा बनता है ।

ऐलूर मे 'ज्योति-निवास' बिजली की बत्तियो से जगमगाने लगा । रामप्रसाद के घर मे इधर पच्चीस सालो से कोई शादी नही हुई थी । अपने एकमात्र पुत्र का विवाह बडी धूमधाम से मनाने की योजना बनाई । एक साथ इतनी बड़ी मोटी रकम उसकी तिजोरी मे जो आनेवाली है ।

रामप्रसाद लोभी है । धन-सग्रह करने की कला मे वह निष्णात है । शादी का खर्च अपने समधी के माथे डाल दिया । अपने घर पर बाहरी तडक-भडक न दिखाई जाए, तो लोग क्या समझेगे । इधर दो दिनो से उनका घर विद्युतदीपों से रात मे भी दिन बना हुआ था ।

पर रामप्रसाद दपति की 'आखो की ज्योति' सुरेश किसी कोने मे दुबककर उल्लू बना था । उसे लगता, माता-पिता जोर-दबाव से उसका जीवन-दीप बुझाने पर तुले हुए है । क्या इस प्रभजन से दीप की रक्षा नही हो सकती ! दो दिन से उसने माथा-पच्ची की, मगर कोई राह नजर न आई । बुझते या टिमटिमाने वाले दीप की लौ मे वह अपनी जिन्दगी की राह कैसे ढूढ पाएगा ।

ज़िन्दगी की राह

हावडा-हैदराबाद ऐक्स्प्रेस ऐलूर स्टेशन पर खडी थी। रामप्रसाद बाराात की यात्रा का पहले ही उचित प्रबन्ध कर चुका था। हैदराबाद मे कल दुपहर को विवाह संपन्न होगा। उस शुभ घडी को निर्विघ्न काटने के लिए रामप्रसाद ने शकुन, राहुकाल इत्यादि देखकर अच्छे ज्योतिषियों से शुभमुहूर्त का निर्णय कराया था। उस लगन मे चन्द्रमा बली था। वर-वधू की जन्म-पत्री देख ज्योतिषियों ने अपनी सारी शक्ति-युक्ति इस लग्न के निर्णय मे लगा दी थी।

रामप्रसाद बहुत प्रसन्न था। ऐसे मुहूर्त में विवाह होता है तो फिर क्या कहना। यश और धन-लाभ तो है ही, साथ ही पौत्र-लाभ का योग बड़ा ज़बरदस्त है। उसका वश-वृक्ष युग-युगों तक पल्लवित एवं पुष्पित हो फल देता रहेगा। अपने भाग्य की मन ही मन सराहना करने लगा। ऐसा मुहूर्त किसी भाग्यवान के लिए भी संभव नही। उसने भी अपने अर्ध ज्ञान को ले पत्रा को दस-बारह बार उलट-पुलटकर देखा था। इससे हाथ खीचना नहीं चाहते थे, इसीलिए तो पुत्र को तार देकर घर बुलाया वरना ऐसी जल्दी क्या आ पड़ी थी ?

गाड़ी की रफ्तार क्रमशः तेज़ होती गई। दूरी को निगलती अपने गम्य स्थान पर पहुंचने को गाड़ी लालायित हो मानो बेतहाशा भागी जा रही थी।

अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दुनिया विकल रहती है। किन्तु साध्य तक कितने लोग पहुंच पाते है ?

ज़िन्दगी की राह

• मानव इस ससार का यात्री है, उसकी जिन्दगी यात्रा के समान है। इस यात्रा के समाप्त होते ही वह अनत यात्रा का पथिक बनता है।

बरसात का मौसम था। बूदा-बादी क्रमश झडी के रूप मे बदल गई। पावस का निबिड अधकार चारो तरफ फैला हुआ था। रह-रहकर बिजली कौध उठती। मेघ गरजने लगे। थोड़ी देर में नाले उमड़ने लगे। मैदान और खेत पानी से भर उठे। पानी का प्रवाह उमड़ते मानो गदगी को साफ कर दूर फेंकने मे तत्पर था। वर्षा का जल धरती का मैल धोते नालों-नदियो मे गिर रहा था। पानी जमा हो-होकर नदियो मे बाढ आने लगी।

ऐलूर से विजयवाड़ा पहुचने तक वर्षा नही थी। विजय-वाडा मे गाड़ी के छूटने के साथ पानी बरसना भी जोर पकड़ता गया।

सुरेश खिडकी के पास बैठा हुआ था। उसके दिल मे बिजलिया कडक रही थी, मेघ-गर्जन हो रहा था और विचारो का तूफान उठा हुआ था। उसकी तीव्रता से सुरेश का दिल दहल उठता था।

वह अपनी निरीह हालत पर मन ही मन बैठा बिसूरता रहा। उसके चेहरे पर विषाद का नग्न ताण्डव हास कर रहा था। पास बैठे हुए लोग बिजली की कौध मे उसके चेहरे को पढ़ पा रहे थे। आधी-वर्षा से कुदरत मे जो तहस-नहस होती

है, और उसका डरावना रूप होता है, वही भीषण रूप सुरेश के मुख-मडल पर झलक रहा था। आधी से पर्वत-मूल हिल जाते है, पर भावो के आवेग से हृदय-मूल भी हिल उठता है। उसके प्रकपित अधर कुछ बडबडा रहे थे। मानो उसकी भावनाए वाणी का रूप धारण करने मे असमर्थ हो गई थी।

गाडी की गति और भी तेज हो गई। झंझावात के धक्कों से खिड़किया हिल जाती थी। तमसाकार प्रकृति मे गाड़ी किसी अज्ञात और अलक्ष्य की ओर बढ़ती प्रतीत हुई।

यात्री सब झपकिया ले रहे थे। सुरेश जाग रहा था। अपने पिता पर उसे क्रोध आ रहा था। सरला की चिन्ता उसे खाये जा रही थी। अकेली वह डरती होगी। वह सोचने लगा—'यह दुनिया भी कैसी खुदगर्ज है। दो दिलो को मिलने नही देती। बल्कि अलग कर उन्हे रोते देख खुशी जरूर मनाती है। शायद कुदरत मे ही यह जलन है। दो मेघ मिलते है तो विद्युत पैदा होती है। प्रेम का परिणाम शोक है। सयोग का वियोग पक्ष भी कैसा सबल होता है। आनंद-वाष्प-रूपी फूलों के साथ शोक के आंसू-रूपी कांटे भी होते हैं। ये दोनों कैसी अनुभूतिया है। एक-दूसरे का पूरक बनकर चलायमान है। किसीके जीवन में सुख पहले आता है तो किसी के जीवन मे दुःख······।' सुरेश विचार-सागर मे खो गया। ज़ोर के धक्के से यात्री सब एक-दूसरे से टकराने लगे। कुछ लोग नीचे गिर पड़े। ऊपर बेंच पर रखा सारा सामान नीचे आ गिरा।

जिन्दगी की राह

अर्धरात्रि का समय था।

गाडी सिकुडती नजर आई। इंजन चार-पांच डिब्बों सहित पानी मे गिर गया। हाहाकार और करुण क्रन्दन एक-साथ गूज उठा।

वह एक भयकर दुर्घटना थी!

लोग घायल हो कराह रहे हैं।

कोई दम तोड़ते छटपटा रहा है, कोई अन्तिम सास ले पानी में बहता जा रहा है, किसीका पैर कट गया है, तो किसीका हाथ, किसीका भाई मर गया है तो किसीकी बहन, किसीका पिता मरा पड़ा हुआ है। ऐसा लगता था कि गाड़ी में सोनेवाले ये लोग दीर्घ निद्रा मे निमग्न है।

काजीपेट के पार करने के बाद गाड़ी ज्यो ही एक पुल पर से चलने लगी, त्यों ही वह पुल धस पड़ा। उसके चार स्तभ ढीले पड़ने के कारण गिर गए।

वह एक बडी नदी भी नही थी, एक पहाड़ी नाला था। बरसात के समय में, उसमें इतनी तेजी से पानी बहता है कि पार करना खतरनाक होता है। चार-पाच डिब्बे पुल पर आ गए थे, धंसकर पुल जल मे जा बैठा। फलत. इजन समेत पांच डिब्बे जलशायी हुए।

दुर्घटना का समाचार मिलते ही रेलवे-विभाग ने उचित सहायता की व्यवस्था की। डिब्बे निकालने से पहले आदमी और सामान निकालने का प्रबन्ध हुआ। क्रेन के आने में देरी

थी । गाड़ी के और डिब्बे कटकर पटरी पर ही रह गए थे ।

रामप्रसाद अपने रिश्तेदारो के साथ अन्तिम डिब्बे में तीसरे दर्जे मे बैठा था । सुरेश अपने दोस्तो के साथ दूसरे दर्जे में बैठा था । लेकिन रामप्रसाद ने सभी डिब्बे ढूढ़े, सुरेश का पता नही चला । वह ढूढता जाता था, उसका हृदय धक-धक करने लगा । डिब्बे में अधेरा छाया था । इजन के कट जाने से बिजली की व्यवस्था फेल हो गई थी ।

अरुणोदय हुआ । उषा की लालिमा खून की लालिमा से आख-मिचौनी करने लगी । दुर्घटनास्थल पर शोक का सागर उमड़ रहा था । कर्मचारियों ने घायल हुए व्यक्तियो को एक जगह लिटाया, लाशों को मैदान मे । सब शान्त पड़े हुए थे ।

रामप्रसाद उन घायल व्यक्तियो मे सुरेश को देख छाती पीटने लगा । बारात के लोगो मे हाहाकार मचा । वहा पर करुणा का स्रोत बह चला ।

रामप्रसाद को रेलवे-डॉक्टर ने सलाह दी कि अभी हम काजीपेट अस्पताल पहुंचा रहे है, वहा चिकित्सा होगी । आप घबराइये नहीं ।

मुहूर्त का समय निकट आया देख हैदराबाद में कन्या-पक्ष वाले विकल थे, स्टेशन पर आदमी भेजे गए । पहले मालूम हुआ कि अभी तक गाड़ी नही पहुंची । बाद को दुर्घटना का समाचार सुनकर वे सब मोटर कार में ले आने के लिए दौड़े-

दौड़े आये ।

मुहूर्त का समय निकट आ रहा है। सुरेश बेहोश हो बिस्तर पर पड़ा हुआ है । उसके सिरहाने रामप्रसाद और वासंती दिल की धड़कने गिनते खड़े हुए थे । सुरेश को दवाई पिलाई गई । थोड़ी देर बाद उसने आखे खोली । यह देख सबकी जान मे जान आ गई ।

वासती-रामप्रसाद अपने पुत्र का नाम ले-लेकर चिल्लाने लगे । सुरेश घावों की पीडा से कराहने लगा । रामप्रसाद को संकेत कर बिस्तर पर बैठने को कहा । अपने माता-पिता की ओर एक बार करुण दृष्टि प्रसारित कर देखा, जिसमे यह भाव भरा था कि मेरी जिन्दगी की नाव डूबती जा रही है, उबारो ।

डॉक्टरो ने जाच करके सदेह प्रकट किया । सुरेश को मालूम हुआ कि अब-तब में उसके प्राण-पखेरू उड़नेवाले हैं । मरने के पहले वह अपने दिल को हल्का बनाना चाहता था । अपने पिताजी को निकट बुलाकर क्षीण स्वर मे बोला—

"पिताजी, मरने के पहले मुझे क्षमा करे । मैने अक्षम्य अपराध किया है । मैंने जिस लडकी से प्रेम किया, वह गर्भवती है। आप जल्दी जाकर उसकी रक्षा नही करेंगे तो वह पाप भी आपके माथे लगेगा । आपसे मेरी अन्तिम इच्छा यही है ।" सुरेश ने सरला का पता बताया और उसकी आखे सदा के लिए बंद हो गई । उसका मुह ढीला हो लुढ़क पड़ा ।

टूटे तरु की भांति रामप्रसाद पृथ्वी पर गिर पड़ा । वासंती

आससान को सिर पर लेकर माथा पीटने लगी ।

बारातियो के हाहाकार से अस्पताल का वह कमरा प्रतिध्वनित हो उठा।

२९

काले बादल धीरे-धीरे आकाश में फैलते जा रहे हैं। सारी दुनिया अंधकार से आवृत गुफा की भाति डरावनी मालूम होने लगी। आखे फाड़-फाड़कर देखने पर भी कुछ दिखाई नही दे रहा था । ऐसा लगता था, मानो प्रलय-काल समीप आ गया है।

समुद्र गरजने लगा । उसका गरजन सुनकर लोग भयभीत हो अपने निवासो मे सिर छिपाने, जान हथेली पर ले दौड़ने लगे ।

यातायात बद हो गया। देखते-देखते मद्रास की सड़कें जलमग्न हो गई । सड़क के किनारे के वृक्ष नीचे गिरकर रास्ते को रोके पड़े हुए हैं । कही बिजली के खम्भे गिर गएं हैं तो कही झोपड़ियों की छते उड़-उड़कर पतगों की याद दिला रही है। झोपड़ियो के प्राणी जहा-तहा जान बचाने भागने लगे। मवेशी रंभाते खुदगर्ज मालिकों की बेरहमी पर आसू बहाने लगे ।

प्रकृति का भीषण रूप प्रलय का स्मरण दिलाने लगा।

क्रमशः अंधकार के पर्दे घने होते गए, समुद्र का घोष तीव्रतर होता गया। झंझा-झकोर के गर्जन से लोगो के दिल दहलने लगे।

मानव के हृदय मे उठनेवाले तूफान भी तो दिल को दहला देते हैं। लेकिन उनका जोर इतना अधिक होता है कि आदमी ढेर हो जाता है। हृदय तडप उठता है। उस आलोड़न को सहन करनेवाली ताकत भी जवाब दे बैठती है। कभी-कभी इस आलोडन से दिल फट जाता है। कभी दुर्बल व्यक्ति के दिल की धड़कने बन्द हो जाती हैं।

आकाश, समुद्र और हृदय में कैसा साम्य है! भावना-तरग, वायु-तरंग और सागर की तरगों में समान धर्म पाए जाने पर भी उसे अनुभव करने की शक्ति, शायद कुदरत मे नही है। इसी अनुभव करने के गुण के कारण मनुष्य व्यथा, पीड़ा और दर्द का शिकार बन जाता है।

दिल मे भावो का विस्फोट होता है तो मनुष्य को हिला देता है। उस संक्षोभ को अनुभव करने की क्षमता कितने लोग रखते है! भुक्तभोगी ही जान सकता है।

ऐसे भावात्मक तूफान नित्यप्रति कितने हृदयों में उठा करते है। कितने दिल रोजाना फट जाते है। चित्रगुप्त के बहीखाते में ही शायद इसका हिसाब अकित होगा। पर प्रशांतता का अनुभव करनेवाले क्या जाने, इस विडबना का कोई कारण भी होगा।

सरला चार-पाच दिन से एकान्त जीवन बिताते ऊब उठी है। वातावरण उसके कोमल हृदय को झकझोरने लगा। उसके मन मे आज न मालूम कैसी मनहूस बाते उठने लगी। उनको भूल जाने की उसने कोशिश की, न मालूम क्यों वे और भी उसके मन से चिपकती जा रही है। वह खीझ उठी, झल्ला उठी। अपनी सारी ताकत लगाकर उन्हें ज्यों-ज्यों वह अपने दिल से समूल उखाड़ फेकने की कोशिश करती गई, त्यों-त्यों उनकी जड़ें और भी मजबूत हो जमती गई।

सरला के हृदय मे असख्य महासागरों के घोष सुनाई देने लगे। वे सब ग्लोब को थपेड़ो मे वायुप्रताडित तरगो की भांति हिलाते नज़र आए। उसकी ध्वनि से कर्णपट फटते-से प्रतीत हुए।

यह कैसी विचित्र बात है। वह बहरी व मूक होती जा रही है। उसे कुछ सुनाई नही देता, सुनाई भी देता है तो एक ही अविराम घोष। कुछ बोल नही पाती। बोलना भी चाहे तो किससे बोले, क्या बोले ? सब अनुभव करने की ही स्थिति है। उसकी यह दशा पल-भर के लिए भी असह्य प्रतीत होने लगी।

हृदय शून्य होता गया।

परन्तु गर्भस्थ पिड अपनी चेतनता का परिचय देते हुए मचलने लगा। गर्भ मे मानवाकार प्राप्त करनेवाला वह रक्त-पिंड सुन्दर आकृति को पाने का सकल्प ले पंचतत्त्वों का पोषण

करता जा रहा है। प्रकृति अपने कर्तव्य का निर्वाह करती जा रही है। उसे किसीकी चिन्ता नही, ईमानदारी से वह कर्तव्य-निष्ठ है।

वह पिड पवित्र है। उसमे कलंक का अन्वेषण किया नही जा सकता। लेकिन वह समाज के सामने आये तो··? समाज के पैने दाढ़ इस अबोध शिशु को निगल नही जाएगे?

आह! समाज कैसा पत्थर का बना है। मेरे मुन्ने को चबा-चबाकर खा जाएगा।

इसके स्मरण-मात्र से सरला चीख पडी। उसकी आवाज चार दीवारो से टकराकर प्रतिध्वनित हो उठी।

अन्धकार उसकी ओर घूरता बढ़ रहा था। विद्युत फेल हो जाने से वह घर और भी डरावना मालूम हो रहा था। एकसाथ सभी बत्तिया जल उठी। देखा, पास मे आज का अखबार पड़ा हुआ था।

सरला अखबार उलटने लगी। भीषण रेल-दुर्घटना का शीर्षक देख वह दया से भर उठी। उसका दिल बता रहा था, न मालूम कितने परिवार उजड़ गए होंगे। कितने बच्चे अनाथ हुए होगे। कितनी युवतिया विधवा हुई होंगी···

आह! कितने लोग एक साथ मृत्यु देवता के जबड़ों में पड़कर उसका ग्रास हुए है। कितने डिब्बे गिर गए है। अरे, ट्रेन का चित्र भी तो छपा है। लो, यहा लोगों की लाशे भी है। कैसी दर्दनाक खबर है!

एक बरात का वर भी मर गया है। बेचारी उस युवती पर क्या बीतेगी? वह अपना सुहाग मनाने चली, तो विधवा-बन बैठी। यह किस्मत भी कैसी करामात करती है। किस्मत के सामने मनुष्य असहाय है।

बरात में वर पक्ष के कई लोग बचे, लेकिन वर और उसके दोस्त···सुरेश घायल हुआ···मेरा सुरेश कैसा होगा? कब आएगा? वह मनौती मनाने लगी कि उसका सुरेश सुरक्षित लौटे।

अरे, यह तो वही है। वही है। उसकी फोटो भी छपी है। ठीक वही है···वही···

सरला का दिल पत्थर बन बैठा। वह चीखी-चिल्लाई। दहाड़े मार-मारकर रोई।

नीरव निशीथ का समय। सारी प्रकृति प्रशात प्रतीत हो रही थी। वर्षा थम गई थी, तूफान शान्त हो गया था।

सरला ने गंभीर हो मेज़ के पास पहुंच चिट्ठी लिखी। उसके पैर आगे बढ़े। वह बढ़ती गई। अन्धकार मे ब्रढ़ती गई···उस अनंत की ओर···जहां से लौटना संभव नहीं···

३०

दीनदयाल और सीतालक्ष्मी ने सुहासिनी को समझा-बुझाकर शान्त किया। राजाराम भी इस नई विपत्ति से हताश हुआ। सबने बड़ी देर तक इस समस्या पर गभीरतापूर्वक चर्चा की। अन्त मे यह निश्चय किया कि उस लड़के के पिता के पैरों पड़कर उनको मनाया जाए और सरला का विवाह मद्रास मे ही संपन्न किया जाए। इस विषय को गुप्त रखने की बात भी सोची गई।

नव दपति को साथ ले दीनदयाल, सीतालक्ष्मी और शंकरन नायर मद्रास के लिए रवाना हुए। सबके चेहरे विषाद से भरे हुए थे। कोई कुछ नही बोल रहा था। इस अवाछित दु ख का सभी लोग समान रूप से अनुभव करते मद्रास पहुचे।

शकरन नायर सरला का कमरा जानता था। सबको वह बिना किसी तकलीफ के सरला के कमरे के पास ले गया। उस घर के किवाड़ बद थे। बाहर चबूतरे पर पैंतालीस साल का एक अधेड़ मनुष्य इस प्रतीक्षा मे बैठा था कि घर का दरवाजा खुलने पर भीतर पहुंच जाए। पहले उसने सोचा कि दरवाजा खटखटाने पर सरला आकर खोलेगी। लेकिन यह सोचकर वह चबूतरे पर पड़ा रहा कि यह बुरा सवाद, वह भी अपने पुत्र की मृत्यु की खबर कैसे सुनाई जाए। अपनी बदकिस्मती को रोता हुआ सिर थामे वह वही चबूतरे पर

लुढक पड़ा, और अपने दुःख को जब्त करने की चेष्टा करने लगा। उसके मन मे यह भी कल्पना थी कि हठात् यह समाचार देने से शायद सरला की हृदय-गति बद हो जाए। इसलिए वह अपने मन मे उस शोक के समय भी योजना बना रहा था कि सरला को कैसे समझाया जाए।

शकरन नायर सबको साथ ले वहा पर पहुचे। उनको देखते ही रामप्रसाद उठ खडा हुआ। बातों के सिलसिले मे उन्हे मालूम हुआ कि वह भी सरला की खोज मे आया है।

पहले यह जानकर सबको प्रसन्नता हुई कि उस युवक का पिता भी आ गया है, अत. समस्या आसानी से हल हो जाएगी। मगर यह जानकर सब विषाद से भर उठे कि उस युवक की मृत्यु हो गई। रही-सही आशा भी जाती रही। रामप्रसाद ने सारा वृत्तान्त, जो कि उसके पुत्र ने कहा था, कह सुनाया। यह सुनकर मानो सबपर वज्रपात हो गया। सरला के समाचार से ही वे लोग दुःखी थे, अब इस नई विपत्ति से उन लोगो ने यह अनुभव किया, मानो सिर मुड़ाते ही ओले पड़े हों।

सबकी आतुरता बढ गई। राजाराम ने आगे बढकर दरवाजे पर दस्तक दी। दस्तक देते ही किवाड़ खुल गए। किवाडों को खुलते देख सबने यही सोचा कि सरला ही खोल रही है। सरला को न देख उसे पुकारते लोग भीतर पहुंचे। लेकिन कही उसका पता नही मिला। उद्विग्न होकर सबने

कमरे का कोना-कोना छान डाला। लेकिन सरला कही नहीं दिखाई दी।

जब वे लोग सरला को खोज ही रहे थे कि अचानक दरवाजा खुलने के कारण जो हवा भीतर आई उससे एक पत्र उड़ता हुआ आया और सुहासिनी के चरणो का चुम्बन लेने लगा। उस समय ऐसा लगता था कि सरला की आत्मा उस पत्र में प्रवेश कर अपने अपराधो के लिए अपनी सहोदरी से क्षमा-याचना कर रही हो।

सुहासिनी ने अपने प्रकंपित करों से पत्र उठाया। वह क्षण-भर के लिए विचलित हुई। आखो के सामने अधकार छा गया। धरती धुरी-विहीन हो घूमती नजर आई। उसका सिर चकराने लगा। उसकी हृत्तंत्रिया असावरी का आलाप करने लगीं। वह पत्र पढने का उपक्रम करने लगी। किन्तु नेत्र सजल होने के कारण अक्षर धुधले-से दिखाई देने लगे। बहुत प्रयत्न करके उसने केवल दो अक्षर पढे—'दी···दी···' वह रो पडी। रोती ही गई। उसे लगा कि सरला उसे पुकार रही है। वह कलफ उठी। सुहासिनी को रोते देख सबके नयन गीले हो गए। समाचार जानने की उत्कंठा बढती गई। दीनदयाल ने कहा—"बेटी, क्या लिखा है पढो तो? हम सब जानना चाहते है। अधीर न बनो!"

सुहासिनी अपने आसुओ को पीते हुए पत्र पढ़ने लगी—

"दीदी,

आज तक मैं अपनी जिन्दगी के साथ खिलवाड़ करती रही। मैने केवल वर्तमान को देखा, भविष्य की ओर मेरा ध्यान नही था। मैने जिन्दगी की गहराई मापने की कोशिश नही की, न कभी उसपर विचार ही किया।

मैं अपने कर्तव्य को भूलकर अधी हो क्षणिक सुख का आनन्द उठाने मे ही जीवन का लक्ष्य समझ बैठी थी। मुझे ज्ञात नही था कि उसका फल अत्यंत दु खदायी होगा। यौवन के उफान पर नियंत्रण न रख सकने के कारण इन्द्रिय-लिप्सा का शिकार बनी। परिवार की प्रतिष्ठा को धूल मे मिलाया, समाज की रीति-नीतियों का अतिक्रमण किया, सहोदरी की सलाह का तिरस्कार किया। प्रेमरूपी मृग-मरीचिका के पीछे पड़कर उसका आकंठ पान करने की उत्कट अभिलाषा से उसकी उपासना करती गई। आखिर मुझे क्या प्राप्त हुआ? निन्दा, तिरस्कार, अवहेलना, अपमान और ग्लानि।

अपनी भूल का प्रायश्चित्त गर्भस्थ शिशु द्वारा कर रही हूं। अवैधानिक संतति की मा बनकर समाज की दृष्टि में पतिता बनी। किन्तु मैं सच्ची बात बतला रही हू, मैने एक युवक से प्रेम किया था। उसके लिए मैंने अपना सर्वस्व अर्पित किया। मेरी दृष्टि में वह मेरा पति था। यद्यपि नाटकीय रूप मे हमारा विवाह नही हुआ था, फिर भी हम दोनों एक पवित्र प्रणय-सूत्र में बध गए थे। हमारा यह बधन भले ही समाज न माने, हम सच्चे अर्थों मे पति-पत्नी है।

हां, मेरे गले में मगल-सूत्र नही बांधा गया। मैं पूछती हू कि नैतिक दृष्टि से मगल-सूत्र की अपेक्षा प्रणय-सूत्र उत्तम नही है ? लडकी की भले ही इच्छा न हो, माता-पिता जोर-जबरदस्ती करके किसी युवक से उस निरीह लड़की के चार लोगो के सामने मगल-सूत्र बधवा देते है और पीले कागजो पर निमत्रण-पत्र छपवाकर भेज देते है तथा दावत-मात्र से वह विवाह वैधानिक हो जाता है !

विवाह दो हृदयो को एक सूत्र मे बांधनेवाला पवित्र कर्म है। यहा कुछ औपचारिक सस्कारों की अपेक्षा दो हृदयों के मिलने की अधिक आवश्यकता है। ऐसा न होकर दहेज के लोभ मे पडकर कितने लोग अनिच्छा से विवाह करते है और अपने और पराए दिल का सौदा करते है, यह सब देखकर भी समाज खुश है। क्योकि इसकी दृष्टि मे वह न्याय है। इन अधे नियमो की आड़ मे मुझ जैसी कितनी अबलाए पिसती जा रही है, कोई गिनती नही। समाज अधा है। उसमे दूसरों की मानसिक दशा को जानने की शक्ति नही और बिवेक भी नही।

मैने इधर कुछ महीनो से कैसे मानसिक क्लेश का अनुभव किया और शोक तथा ग्लानि से पिघलती गई, वर्णन नही कर सकती। ऐसी मानसिक अशान्ति को लेकर दूभर जीवन व्यतीत करते इस काया को और कुछ सालो तक घसीटने की अपेक्षा चिर शान्ति ही मुझे कहीं अधिक शान्तिदायिनी प्रतीत हुई।

बहन, मै पापिन हू। मुझपर कलंक लगा है। तुम जैसी पवित्र वनिता को मै अपना काला मुह कैसे दिखाऊ? मै जानती हू कि तुम भूदेवी की भांति क्षमाशील हो। लेकिन···
···लेकिन मैं अपने इस पापी पेट को ले तुम्हारे सामने कैसे आऊ?

मैं अब भी कहती हू कि मैने अपना शरीर नही वेचा। ऐसा पाप-कार्य मै कभी नही कर सकती। मैने प्रेम किया, दिलोजान से प्रेम किया, अपना पति बनाकर प्रेम किया। मेरे मन मे दूसरी भावना ही नही थी। मेरे हृदय में किसी अन्य पुरुष के लिए स्थान नही था।

मैंने विश्वास के साथ अपनी इच्छा से प्रेम किया और उसके प्रेम को भी प्राप्त कर सकी। मै जानती हू कि कानून की दृष्टि से भले ही मै पापिन हूं, लेकिन नैतिक दृष्टि से कभी नही। मानव के जीवन में कानून ही सब कुछ नही बल्कि उससे भी उन्नत स्थान नीति का है। इस दृष्टि से हमारा नैतिक पतन आज तक नहीं हुआ। लेकिन इस सत्य को देखने की और परखने की आंखें समाज को कहां? इसलिए मुझ जैसे लोगों को असमय में ही जिन्दगी की राह अपने ही हाथों से मिटानी पड़ती है।

मुझे तुम कायर कह सकती हो। मगर मैं जीवित रहकर अपमान का ही अनुभव करती। मेरे सामने अब कोई राह नही है सिवाय आत्महत्या के।

कानून की दृष्टि मे आत्महत्या का प्रयत्न जुर्म हो सकता है वह दडनीय भी, किन्तु आत्महत्या नही ।

मै जिस लोक मे जा रही हू, वहा यदि कोई न्यायालय हो तो मै यह साबित कर सकूगी कि मै जिन परिस्थितियों मे आत्महत्या कर रही हू, वह अपराध नही ।

वहन, मेरा सर्वस्व लुट गया। आज तक मै जिसको अपना पति मानती थी, जो मेरा जीवन-सर्वस्व था, उसे निर्दयी विधि ने जबरदस्ती मुझसे छीन लिया। अब मै किसके बल पर जिऊ ? नारी के लिए अपना पति ही सब कुछ होता है। विधिवत् मेरा विवाह न हुआ तो मैंने उसे हृदयपूर्वक वरण किया है। वह मेरे जन्म-जन्मातरो का स्वामी है। अब मै भी उसीके पास जा रही हू ।

यह पत्र लिखते मेरे नेत्रो मे से अश्रुप्रवाह तुम्हारे चरण धोने के लिए उमड़ रहा है। यदि मुझे पुनर्जन्म हो तो मै यही चाहूगी कि मै अगले जन्म मे भी तुम्हारी सहोदरी होकर जन्म धारण करू ।

......बि......दा......

तुम्हारी अभागिनी बहन
सरला"

○ ○ ○